पर्वतों की गूंज

हिमाचल पुस्तक भण्डार
गांधी नगर, दिल्ली-110031

हरिराम जस्टा



पर्वतों की गूंज

मूल्य चालीस रुपये / प्रथम संस्करण : अक्तूबर 1984 / आवरण : सुभाष मदान /
प्रकाशक : हिमाचल पुस्तक भण्डार, IX/6935 महावीर चौक, गांधी नगर दिल्ली-31
मुद्रक : डिम्पल प्रिण्टर्स, IX / 7092, गुरू नानक गली, गांधी नगर दिल्ली 110031

PARVATON KI GOONJ
by Hari Ram Jasta

(HINDI)
Price : Rs. 40.00

परमपूज्य पिता
श्री पद्म सिंह की
स्मृति शेष को !

मैंने पूछा था एक सितारे से
इन्तहा भी सफ़र की है कोई
सुनके मेरे सवाल को शबनम
रात भर फूट-फूट कर रोई

निमंत्रण

निसन्देह विश्वसाहित्य में "**द्यौ : पिता पृथ्वी माता**" का वैदिक सूत्र महत्त्वपूर्ण है । पृथ्वी सच्चे अर्थो में सबका भरण-पोषण करने वाली माता है । सबके लिए इसके वरदानों के स्रोत समान रूप से उन्मुक्त हैं । इसलिए उस पृथ्वी का अणु-अणु स्तुतीय है, जो हमारे लिए जीवन दायिनी है ।

भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भो गैड, भवन्मातृमद्भ्यः (मंत्र 60) जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की शरीर रचना मातृ-कुक्षि में होती है और प्रत्येक को अपन जन्म के लिए जननी की आवश्यकता है, वैसे ही संसार के स्वाभाविक विधान में किसी-न-किसी देश का भूमि से मानव का सम्बन्ध होता ही है । उसी भूमि के साथ हमारा हृदय प्रगाढ़ स्नेह में बध जाता है । लगभग यही स्थिति मेरी है और मेरी तरह सभी देश वासियों की है । इसी शाश्वत स्नेह की अभिव्यक्ति में हिमाचली लोक जीवन से कुछ चुने अंश लेकर प्रस्तुत रचना द्वारा कर रहा हूं ।

लोक जीवन तो एक अथाह समुन्दर है, उसमें से कुछ सीपियां चुनकर लाया हूं । यह दुस्साहसपूर्ण कार्य भी मैंने इस भावना से ओत-प्रोत हाकर किया है, कि "**जो लोकों का प्रत्यक्ष दर्शन करता है. लोकजीवन में प्रविष्ट होकर स्वयं उसे अपने मानस-चक्षु से देखता है, वह व्यक्ति उसे पूरी तरह समझता बूझता है ।**" साहित्य और लोकतन्त्र ये एक ही जीवन के दो चक्र हैं । दोनों के सन्तुलित विवेक स ही जीवन की व्याख्या सम्भव है ब्रह्म के समान यदि भारतीय जीवन को चतुष्पाद माना जाए, तो उसके एक पाद की प्रतिष्ठा वेद या शास्त्रीय चिन्तन में और त्रिपाद् की अभिव्यक्ति लोक के क्रियशील जीवन में पायी जाती है ।

हिमाचल प्रदेश की लोकभाषा-पहाड़ी-आकाशगंगा के समान आज भी अपनी पावनी शक्ति से जनजीवन को सुमधुर और प्रकाशमय बना रही है । उसी लोकगगा के प्रवाह को सजल बनाने के लिए अनक अन्य नदी-नालों की तरह में भी आ गया हूं । बहुत समय से जिन प्रश्नों को में महत्त्वपूर्ण समझता रहा, उन्ही को शब्द रूप दिया है । बीच मे कभी-कभी कुछ अटपटी बाते भी सुनने पढ़ने को मिली, उनसे मेरी यह धारणा और भी

निमंत्रण

निसन्देह विश्वसाहित्य में "**द्यौ : पिता पृथ्वी माता**" का वैदिक सूत्र महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी सच्चे अर्थो में सबका भरण-पोषण करने वाली माता है। सबके लिए इसके वरदानों के स्रोत समान रूप से उन्मुक्त हैं। इसलिए उस पृथ्वी का अणु-अणु स्तुतीय है, जो हमारे लिए जीवन दायिनी है।

भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भो गैड, भवन्मातृमद्भ्यः (मंत्र 60) जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की शरीर रचना मातृ-कुक्षि में होती है और प्रत्येक को अपन जन्म के लिए जननी की आवश्यकता है, वैसे ही संसार के स्वाभाविक विधान में किसी-न-किसी देश की भूमि से मानव का सम्बन्ध होता ही है। उसी भूमि के साथ हमारा हृदय प्रगाढ़ स्नेह में बंध जाता है। लगभग यही स्थिति मेरी है और मेरी तरह सभी देश वासियों की है। इसी शाश्वत स्नेह की अभिव्यक्ति में हिमाचली लोक जीवन से कुछ चुने अंश लेकर प्रस्तुत रचना द्वारा कर रहा हूं।

लोक जीवन तो एक अथाह समुन्दर है, उसमें से कुछ सीपियां चुनकर लाया हूं। यह दुस्साहसपूर्ण कार्य भी मैंने इस भावना से ओत-प्रोत होकर किया है, कि "**जो लोकों का प्रत्यक्ष दर्शन करता है. लोकजीवन में प्रविष्ट होकर स्वयं उसे अपने मानस-चक्षु से देखता है, वह व्यक्ति उसे पूरी तरह समझता बूझता है।**" साहित्य और लोकतन्त्र ये एक ही जीवन के दो चक्र हैं। दोनों के सन्तुलित विवेक से ही जीवन की व्याख्या सम्भव है ब्रह्म के समान यदि भारतीय जीवन को चतुष्पाद माना जाए, तो उसके एक पाद की प्रतिष्ठा वेद या शास्त्रीय चिन्तन में और त्रिपाद् की अभिव्यक्ति लोक के क्रियशील जीवन में पायी जाती है।

हिमाचल प्रदेश की लोकभाषा-पहाड़ी-आकाशगंगा के समान आज भी अपनी पावनी शक्ति से जनजीवन को सुमधुर और प्रकाशमय बना रही है। उसी लोकगगा के प्रवाह को सजल बनाने के लिए अनक अन्य नदी-नालों की तरह में भी आ गया हूं। बहुत समय से जिन प्रश्नों को में महत्त्वपूर्ण समझता रहा, उन्हीं को शब्द रूप दिया है। बीच मे कभी-कभी कुछ अटपटी बाते भी सुनने पढ़ने को मिली, उनसे मेरी यह धारणा और भी

प्रबल हुई, कि लोकसाहित्य या लोक वार्ता की तात्विक समीक्षा को जनचेतना के एक नवीन उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए । इसके लिए ऐसी ही अनेक रचनाओं की अपेक्षा है।

इधर हिमाचली लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता पर लिखने वालों की दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी ही हुई है, परन्तु इनमें से कितनी रचनायें लोकजीवन को सन्तुलित सही और अपेक्षित अभिव्यक्ति दे पाई है, यह समय ही बतायेगा । इसका निर्णय सुधी पाठक स्वयं करेंगे ।

इस पुस्तक को तैयार करने में प्रिय सुपुत्री शशी प्रभा एम. ए. वीणा-वादिनी और जीवन-सहचरी कलावती से जो सहयोग और समय मिला, उसके लिए मैं आभार प्रकट करता हूं।

शिवरात्री 29 फरवरी, 1984. —हरिराम जस्टा

अम्बिका निवास
(इंजन घर समीप)
संजोली, शिमला-6.

क्रम

1

पहाड़ी भाषा : हिमाचल वासियों की मातृभाषा

सभी भाषाविद् मानते हैं कि प्रारम्भ से मनुष्य अपने मनोभावों को श्वासोवास के साथ निकलने वाली ध्वनियों के रूप में व्यक्त करता होगा, फिर अनुकरण के आधार पर कुछ शब्द उसके शब्दकोष में सम्मिलित हुए होंगे। धीरे-धीरे शब्दों के नए मेल गठित हुए। उनके साथ नए अर्थ जुड़े। अनेक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन होते चले, अर्थों में परिवर्तन हुए। अनावश्यक शब्द लुप्त हो गए, नए सम्पर्कों के साथ नए शब्द आए और इस तरह भाषा विकसित होती चली गई। इसी स्वाभाविक क्रम से पहाड़ी भाषा का विकास होता रहा।

भारत की प्रत्येक भाषा हमारी अमूल्य निधि है और राष्ट्रीय एकता के लिए इन सबका विकास जरूरी है। सभी भाषायें एक मां की पुत्रियां और निकट सम्पर्क और नित्य आदान-प्रदान से इनके अनेक लक्षण एक से हैं। किसी भाषा के नाम पर कीचड़ उछालना या एक भाषा या बोली को दूसरी से श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा, देश की एकता, अखण्डता और सामंजस्य के हित में नहीं है। हम इस सन्दर्भ में यदि पहाड़ी का अध्ययन करें तो इस सम्बन्ध में फैली सारी भ्रांतियां दूर हो जायेंगी।

हिमाचल प्रदेश के लाखों ग्राम निवासियों का दैनिक जीवन जिस भाषा और साहित्य में धड़कता है, वही पहाड़ी (हिमाचली) है। पहाड़ी हिमाचल वासियों की बोल-चाल की मातृभाषा है। इस भाषा का लोकसाहित्य दमन-शोषण, भौतिक, प्राकृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक कठिनाइयों तथा इनसे मुक्ति के संघर्षों के बीच जीवित रहता आया है। इसलिए पहाड़ी (हिमाचली) एक विचार है। यह हिमाचल का व्यक्तित्व है। यह एक मन्दिर के समान है, जिसमें हिमाचल प्रदेश की आत्मा निवास करती है।

भाषा लिखित हो या बोलचाल की, उसके द्वारा मानव व्यक्तित्व को शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रश्न उठता है कि हम पहाड़ी भाषा के लिखित रूप और साहित्य से कुछ वसूलने के लिए इसे अपना रहे हैं या सही लोकवादी स्तर पर इसे जोड़ने, मथने, सींचने, बीज बोने और अपनी जमीन को पुख्ता करने के लिए? इस प्रश्न का उत्तर खोजने का मैं यहां प्रयास करूंगा।

आज तक थोड़ी-सी जगहों पर ग्रामीण शैली और लोकभाषा के कुछ शब्दों को फैशन के बतौर कुछ हिमाचली लेखकों ने अपनाया भी है। परन्तु लोकजीवन के संघर्ष तथा ग्रामीण जनता के दुःख-दर्द अभी तक उसमें स्थान नहीं पा सके। अभी तक हम शहरी भाषा-शास्त्रियों और साहित्यकारों का शहराना लहजे से पहाड़ी भाषा के प्रति शहरी भ्रमों से मुक्त नहीं कर सके। उन्होंने ग्रामीण लोगों में ऐसी आत्मीयता पैदा कर दी है कि हिमाचल के लोकगीतों, लोककथाओं, गाथाओं, नृत्यों की तथा लोकजीवन के संघर्षों को छूना हिमाचल प्रदेश के कुछ साहित्यकारों का पुरानापन लगता है। जबकि यह काम अभी तक नियमित रूप से आगे बढ़ा ही नहीं।

पहाड़ी की प्रत्येक उपभाषा और शैली हिमाचल प्रदेश रूपी कमरे में एक प्रकाशित दीपक के समान है। सभी दीपकों के साथ प्रकाशित होने से सारा कमरा जगमगा उठेगा।

पहाड़ी एक जीवित भाषा है क्योंकि सभी हिमाचली इसी भाषा में प्रतिदिन बातचीत करते हैं। इसमें आज तक अनेक परिवर्तन हुए और भविष्य में भी होते रहेंगे। इन परिवर्तनों के कारण यह कहना कि इसका कोई एक अन्तिम रूप नहीं है। भाषा की प्रकृति, स्वभाव और गति की पहचान से अनभिज्ञता प्रकट करना है। जीवित भाषा का कोई अन्तिम रूप नहीं होता। भाषा में इस परिवर्तन के लिए जो महत्त्वपूर्ण तत्त्व काम करता है, वह मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह प्रयास से सुकरता चाहता है। वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक वैभिन्य के कारण भाषा के रूप में परिवर्तन होते रहते हैं। यथार्थतः भाषा केवल मौखिक भाषा को कहना चाहिए। उसका लिखित रूप तो उसी मौखिक रूप पर आधारित है और उसी के पीछे-पीछे चलता है। यह मौखिक भाषा स्वयं अनुकरण पर आधारित है। अतः दो आदमियों की भाषा बिल्कुल एक-सी नहीं हो सकती। अनुकरणप्रिय प्राणी होने पर भी मनुष्य अनुकरण की कला में पूर्णतः निपुण नहीं है। इसी प्रकार भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं अन्य सामाजिक कारण भी भाषा में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी रहते हैं। इसलिए भाषा का कोई नितांत स्थिर रूप सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से यदि हम पहाड़ी का विकास एवं वर्तमान स्वरूप देखें, तो बहुत सारी भ्रान्तियां दूर हो सकती हैं।

मनुष्य अपने चारों ओर के वातावरण से भाषा सीखता है। पैतृक वातावरण से

अलग करके भिन्न वातावरण में रखे जाने पर शिशु नए वातावरण में प्रचलित भाषा ग्रहण कर लेता है। अतः थामस डेविस का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि जो अपनी शैशवावस्था की भाषा की अवहेलना करता है, वह मृत्यु का ही आलिंगन करता है। संसार की प्रत्येक भाषा उसके बोलने वालों के भौतिक वातावरण, सांस्कृतिक प्रभाव, महान विभूतियों का प्रभाव, सामाजिक, राजनैतिक एवं बोलने वालों की उन्नति के कारण विकसित होती है और उन्हीं कारणों कुप्रभाव, ध्यान की कमी, अशिक्षा, जान-बूझकर परिवर्तन, जातीय मनोवृति इत्यादि से भाषायें मृत भी हो जाती हैं। जब एक सत्ताधारी समूह किसी भाषा की किसी बहाने उपेक्षा करता है, उस भाषा को समाप्त करना चाहता है, तो समझ लीजिए कि सम्बन्धित जाति (बोलने वालों) को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से समाप्त करने की चेष्टा हो रही है।

कमाल अतातुर्क द्वारा जब तुर्की की क्रान्ति के बाद अरबी और फारसी भाषा को जो पिछले 1200 वर्षों तक उस देश की सांस्कृतिक धरोहर रही, त्याग दिया गया। परिणामस्वरूप तुर्की पिछले 70 वर्षों में कोई नोबल पुरस्कार विजेता, ख्याति प्राप्त लेखक या चिन्तक उत्पन्न नहीं कर सकी। यह सत्य और भी उभर कर सामने आ जाता है, जब हम पहाड़ी (हिमाचली) के विकास पर दृष्टिपात करते हैं। आज भी हिमाचल में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो वस्तुतः निर्दोष और शुभ कामनायुक्त हैं, पर कहते नहीं झिझकते कि पहाड़ी कोई भाषा नहीं है। यहां तो अनेकों बोलियां हैं। जिनमें परस्पर विरोध की प्रतिशतता बहुत ही कम है। इन बोलियों की संख्या समय-समय पर घटती और बढ़ती रही है। इस संदर्भ में 10 वर्ष पहले मैंने अपनी पुस्तक हिमाचल गौरव में लिखा था—1931 में पहाड़ी की 30 बोलियां और फिर 22 बिना किसी वैज्ञानिक आधार के दिखाई गई वही बोलियां सत्ताधारी समूह के बजाए एक नए मातृभाषा के सिद्धान्त के आधार पर 1931 की जनगणना में बढ़कर 63 हो गई। इनके अतिरिक्त 10 लाख लोगों को अनिर्धारित पहाड़ी बोलने वालों के अन्तर्गत रखा गया। उनके अनुसार चूंकि हर घाटी में नई बोलियों ने जन्म लिया, इसलिए असली पहाड़ी लुप्त हो गई। डा० यशवन्त सिंह परमार के अनुसार पंजाब के मैदानों में सत्ता प्राप्त करके इच्छुक वर्गों के राजनीतिक हितों के अनुरूप ही पहाड़ी पैदा हुई, गायब हुई और फिर पैदा हुई। इसलिए आज हमें यह सोचना और समझना होगा कि हमें अपने परिश्रम, संघर्ष, प्रेम और उल्लास की दैनिक बोलचाल की भाषा को जीवित रखने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने ही होंगे।

हिमाचल भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित बोलियों की संख्या के सन्दर्भ के दिवंगत पहाड़ी भाषाविद् श्रीयुत हरिचन्द पाराशर ने पहाड़ी (हिमाचली भाषा पुस्तक की भूमिका में सारगर्भित प्रकाश डाला है। चूंकि हिमाचल में रियासती युग में रियासत के नाम से विशेषकर बनाकर अपनी बोली का नाम देने की प्रथा थी। अतः पहाड़ी हिमा-

चली, भाषा के अलग-अलग नाम प्रचलित हो गए हैं। जैसे क्योंथली, बघाटी, कलहूरी, बुशहरी, सणोची, जुब्बली, चम्बयाली, सुकैती, मंडियाली सिरमौरी, कुल्वी। ये नाम आदमी के मानस पर पहाड़ी की किसी अलग भाषा का एक गलत प्रभाव डाल देते हैं। वस्तुत: स्थिति यह है कि जितनी पहले रियासतें थीं उतनी पहाड़ी के उपभाषा या बालियों के रूप नहीं थे और आज भी जितने जिले हैं, उतने उपभाषा रूप या बोलियां नहीं हैं। बोलचाल में भाषा के विभिन्न रूप हुआ करते हैं। हिन्दी के भी तो कई रूप हैं। पहाड़ी के भी कई हैं। विभिन्न रूप तो धीरे-धीरे उपभाषा की ताकत बन जाते हैं। क्योंकि एक ही शब्द के लिए एक से अधिक शब्द प्रचलित होने से समय पाकर उनमें अभिधा, लक्षण, व्यंजना शक्ति बढ़ती है। इसलिए पहाड़ी भाषा के अपने अनेक उप-भाषा एवं बोलियों के रूपों को उभरने के लिए बराबर की सुविधाएं एवं साधन उपलब्ध कराने होंगे।

इस बात से सभी भाषाविद् एकमत हैं कि किसी भी देश या प्रदेश या आंचल और जाति की सभ्यता के विकास की, उसके जीवन की गतिविधि की और उसके सांस्कृतिक धरालत के विभिन्न स्तरों की झांकी उसके लिखित साहित्य की अपेक्षा उसके मौखिक साहित्य में ही अधिक उपलब्ध होती है। जन-जन के मात्र मौखिक प्रयत्न द्वारा जो लोकाभिव्यक्ति होती रहती है, वह इस प्रकार उपेक्षा की पात्र नहीं जिस प्रकार की उपेक्षा आज तक की जाती रही है। इस सन्दर्भ में महात्मा गांधी जी के शब्द कितने सशक्त एवं सारगर्भित हैं। मैं अपनी मातृभाषा से चिपट जाता हूं। चाहे उसमें कितनी ही कमियां हों। कभी यही मुझे जीवनदायिनी दूध दे सकती थी। राष्ट्रपिता के इन सशक्त शब्दों में मानव मन का शाश्वत सत्य छिपा है। जिसकी हम अवहेलना नहीं कर सकते।

15 अप्रैल 1948 से पूर्व वर्तमान हिमाचल प्रदेश अनेक छोटे-छोटे इकत्तीस राज्यों में विभक्त था, फलत: किसी भी दिशा में यहां की जनता की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रगति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य थी। हिमाचल प्रदेश की स्थापना के बाद यहां पर लोकजीवन की असंख्य कड़ियां जो बिखरी-सी दीखती थीं, धीरे-धीरे एक स्पष्ट रूप में उतरने लगीं।

जहां प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन की एकरूपता निखरने लगी, वहां प्रदेश के जन-जन की भाषा भी अपने सुन्दर और शक्तिशाली रूप में विकसित और परिमार्जित होने के लिए अंगड़ाइयां लेने लगी। हिमाचल की लोकप्रिय सरकार ने जनमानस की इस महत्त्वपूर्ण कड़ी को वैज्ञानिक रूप देने के लिए साहसिक कदम उठाया। हिमाचल प्रदेश राज्य भाषा संस्थान की स्थापना इस दिशा में एक सराहनीय कदम है। जनतन्त्र में जनता की भावना, विचार, महत्त्वाकांक्षाएं, आशाएं, सुख-दु:ख और आदर्शों को अभि व्यक्ति देने वाली भाषा की एवं उसके अनेक रूप आदर और प्रोत्साहन निश्चय ही साम-यिक कदम हैं। वैसे भी रवि बाबू के शब्दों में—भाषा नदी की धारा जैसी होती है। उस

पर किसी का नाम खोद कर नहीं रखा जा सकता। ऐसा लगता है कि वह सदा इसी तरह स्वाभाविक रूप से प्रभावित होती आई है। लेकिन वास्तव में कौन से झरनों द्वारा वह गठित और परिपुष्ट हुई है। इसका निर्णय करने के लिए मूल स्वांत तक पहुंच कर दुर्गम पर्वत शिखर पर पहुंचना होगा। किसी विशिष्ट ग्रन्थ, चित्र या मूर्ति के लिए यह सम्भव है कि वह चिरकाल तक अपना स्वातन्त्र्य सुरक्षित रखते हुए अपने रचनाकार की स्मृति बनाए रखे। लेकिन भाषा छोटे-बड़े असंख्य लोगों के हाथ से जीवन लाभ करके व्याप्त होती है। वह अपना प्राचीन इतिहास भूल जाती है और किसी विशेष व्यक्ति के नाम की घोषणा नहीं करती।

मनुष्य का प्रकृति से, मनुष्य का प्रकृत्यातीत शक्ति से, मनुष्य का मनुष्य से जो रागात्मक सम्बन्ध है उसी को बांधधारा कहते है। जनता की भाषा और उसका साहित्य उस प्रवाह की उपनदियां होती हैं। कई गति-परम्पराएं होती हैं, सब कुछ उसी का यही बांधधारा संस्कृति को जीवन शिरास्वरूपा त्रिवेणी है। हिमाचल प्रदेश की लोकभाषा पहाड़ी भी इसी त्रिवेणी में अपना योगदान करने के लिए अपना अधिकार और अवसर चाहती है। यह सुअवसर प्रदान करना केवल सरकार का उत्तरदायित्व ही नहीं, स्थान सविशेष के बुद्धिजीवियों का भी है। यही नहीं सामग्री जुटाने, उसका वैज्ञानिक विश्लेषण सम्प्रदान और प्रकाशन के लिए प्रचुर मात्रा में धनराशि की भी आवश्यकता हो सकती है। जिसके लिए प्रदेश के धनिक वर्ग का सक्रिय सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। इन सब बातों पर विमर्श करने तथा कार्य रूप देने के लिए एक गैर सरकारी संस्था की भी अत्यन्त आवश्यकता है। जो लोकभाषा के वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा में पथ-प्रदर्शन कर सके।

कोई भी लोकभाषा अपने वास्तविक और निखरे रूप में न ही नारेबाजी से, न राजनैतिक रंग देने से, न प्लेटफार्म में भाषण देने से, न समाचारपत्रों में प्रेस विज्ञप्ति छपवाने से और न ही विवादों से आती है। उसके लिए तो उस भाषा के साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों के सक्रिय सहयोग एवं समर्पित भावना की हर जगह, हर घड़ी आवश्यकता है। लोकसाहित्य की परम्परागत निधियां लोककहावतें लोककथाएं एवं लोकगीत वैज्ञानिक संग्रह का विशाल रूप धारण करने की बाट जोह रहे हैं। सबसे बड़ा अभाव जो अभी तक खटकता है, वह इस प्रदेश में कुछ अच्छी प्रकाशन संस्थाओं का न होना और पहाड़ी में बढ़िया और ठोस साहित्य का अभाव।

इधर कुछ लोगों ने हिमाचल प्रदेश की जनभाषा, मातृभाषा पहाड़ी को प्रोत्साहन देने पर उसे सरकार को हिन्दी विरोधी नीति बताया, जो नितान्त निराधार है। हिमाचल की लोकभाषा कदाचित हिन्दी को हानि नहीं पहुंचा सकती। यह लोकभाषा तो राष्ट्र भाषा हिन्दी की पोषक है। हिन्दी और संस्कृत के बिना इसके अस्तित्व की कल्पना करना ही निरर्थक है। जो स्थान हिन्दी में ब्रजभाषा, अवधी, शौरसैनी

राजस्थानी, हरयानवी, और डोगरी का होगा वही स्थान पहाड़ी हिमाचली का है और होगा। यह मेरा पूर्ण विश्वास है। हिन्दी को राष्ट्रीय जीवन में सम्मान का स्थान मिले बिना हिमाचली का विकास भी कठिन हो जाएगा। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में समन्वय स्थापित करने में हिन्दी की विशेष उपयोगिता स्पष्ट है। परन्तु इसके साथ-साथ यदि पहाड़ी भाषा के विकास और विस्तार के लिए प्रयत्न भी जारी रहे, तो उससे हिन्दी या अन्य किसी भारतीय भाषा को क्या हानि होने जा रही है?

हिमाचल की लोकभाषा के पनपने, निखरने, अलंकरित होने, वैज्ञानिक प्रयोग-शाला के सांचे में ढलने और अपना व्यक्तित्व प्रकाश में लाने और उभारने के लिए अभी अनेक कुंठाओं, संकुचित मनोवृत्तियों, पूर्व-निश्चित-धारणाओं, व्यावहारिक उलझनों, स्वार्थी दृष्टिकोणों के बीहड़ मार्ग से गुजरना है। मार्ग में ऐसी ही अनेक अन्य बाधाओं से जूझना है, सोतों को झकझोरना है, जागतों का मार्ग-दर्शन करना है और कुहरा और फूल हटाना है, ताकि जनता और अन्य भारतीय भाषाएं उसके सुन्दर रूप को देख सकें। इसके लिए कुछ निष्ठावान, प्राणवान, सरस्वती-पुत्रों और भाषा-दधीचियों की आवश्यकता है जो इसे वास्तविक रूप दे सकें।

लोकभाषा या मातृभाषा

मानव अपना सामाजिक जीवन परिवार से आरंभ करता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य परस्पर मातृभाषा का प्रयोग करता है। मातृभाषा को बोलने वालों की आत्माओं का वास्तविक चित्र कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि इसी से हमें पता चलता है कि बोलने वालों ने क्या कुछ देखा। कैसा जीवन व्यतीत किया है और क्या कुछ अपनाया है। यदि इसमें बहुत कुछ उपलब्धि है तो उनकी मातृभाषा पुष्पों और फलों से लदे हुए उपवन से बहने वाली सुगन्धित समीर जैसी होगी। मातृभाषा का कोष बाल्यकाल के वातावरण में एकत्र होना आरंभ हो जाता है और उस समय के मन पर अंकित शब्द हम कभी विस्मरण नहीं कर पाते। जितनी अधिक गहन बोलने वाले लोगों की खुदाई होगी और जितनी अधिक खोज होगी, उतनी अधिक वह मातृभाषा समृद्ध होगी। हर व्यक्ति उससे प्यार करेगा। विश्वास और श्रद्धा देगा। इसके बारे में कोई भद्दा या अपमान-जनक शब्द, वाक्य या वक्तव्य असहनीय लगता है।

पहाड़ी हिमाचल की लोकभाषा एवं मातृभाषा है। इस सत्य को कोई झुठला नहीं सकता। कहते हैं एक बार गोपाल भांड के आश्रयदाता महाराज कृष्णचन्द्र के दर-बार में एक पंडित आए। वे भारत की अधिकांश प्रचलित भाषाएं, यहां तक कि संस्कृत, फारसी, अरबी आदि प्राचीन भाषाएं भी धारा प्रवाह बोल सकते थे। महाराज की सभा के पंडित यह निर्णय नहीं कर सके कि उनकी मातृभाषा क्या है?

गोपाल भांड तक जब यह समस्या पहुंची तो वे बोले—मैं भाषाओं का जानकार

तो नहीं, किन्तु मेरी प्रणाली के सम्बन्ध में यदि मुझे आजादी दी जाए तो मैं पता लगा सकता हूं कि उक्त पंडित की मातृभाषा क्या है।

यह शर्त स्वीकार कर ली गई। उसी दिन जब सब लोग सीढ़ियां उतर रहे थे तो गोपाल ने उक्त पंडित महोदय को ऐसा धक्का दिया कि वे नीचे जा गिरे। क्रोधावेश में उनके मुंह से धारा प्रवाह गालियां निकलने लगीं।

गोपाल बोले—सुनिये यही इनकी मातृभाषा है। तोते को आप राम-राम और राधेश्याम रटाया करते हैं तो वह राम-राम की रट लगाता है, किन्तु जब बिल्ली उसे दबोचने लगती है तो मुंह से टें-टें के सिवा और कुछ नहीं निकलता। सुख के साथ किसी भी भाषा का प्रयोग आप कर सकते हैं किन्तु संकट काल में मातृभाषा का ही स्मरण आता है।

जैसे पंजाब की भाषा पंजाबी है, महाराष्ट्र की मराठी, बंगाल की बंगला ठीक वैसे ही हिमाचल प्रदेश की भाषा पहाड़ी है। पहाड़ी प्रदेश में वहां के निवासियों की भाषा को प्रोत्साहन मिले, शोध कार्य हो, शब्दकोष बने, लोकसाहित्य के असंख्य संग्रह छपें और पहाड़ी भाषा को इस प्रदेश की सरकार और जनता मिलकर सर्वोच्च गौरव के स्थान पर बैठा दे, इससे बड़ा सराहनीय कार्य दूसरा क्या हो सकता है ?

इस संदर्भ में एक घटना स्मरण आ रही है। एक बार मैं शिमला से कोटसाई बस में यात्रा कर रहा था। मेरे आस-पास कुछ भाषाविद् बैठे थे और अंग्रेजी-उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी उनके होंठो से फूल बन कर झड़ रही थी, कि इतने में एक ग्रामीण यात्री ने कंडक्टर से बातें करते हुए कहा कि बाकी पैसे नहीं चूटै दौ। यह सुनकर उनमें से एक भाषाविद् पर हंसी का दौरा पड़ गया। वह चूटै दौ शब्द दोहरा-दोहरा कर हंसी से लोट-पोट हो रहे थे। यह रही पहाड़ी भाषा क्या भाषा है।

मैंने विनम्र निवेदन किया—क्यों साहब, टूटे या चेंज शब्द वेद या पुराणों में आया है ? कहने लगे—क्या मतलब है आपका ? मैंने निवेदन किया—जिसे हिन्दी में टूटे और अंग्रेजी में चेंज कहते हैं, उसे पहाड़ी में चूटै बोलते हैं। इसमें हंसने की कौन-सी बात है ? आपको जितनी हंसी इस बात पर आती है उतनी हंसी हिमाचल के ग्राम-वासियों को आपके कई शब्दों पर आ सकती है। तर्क न आपके पास है न इनके पास। लेकिन वो तो कभी अंग्रेजी-फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी पर नहीं हंसते। लेकिन आप हमारी हिन्दी संस्कृत मिश्रित मातृभाषा पहाड़ी की हंसी उड़ाते हैं।

जब मैंने तथ्य को जरा और स्पष्ट किया, तो वे कहने लगे नहीं साहब, हंसी कौन उड़ा सकता है। वह तो मुझे एक शब्द विचित्र-सा लगा था, इसलिए हंसी आ गई थी। लेकिन आप यह तो अवश्य मानते होंगे कि हिन्दी पहाड़ी से कहीं श्रेष्ठ और विकसित भाषा है।

मैंने कहा—मुझे तो किसी भाषा का दूसरी भाषा से श्रेष्ठ सिद्ध करने वाला

विवाद ही निराधार लगता है। हर व्यक्ति अपनी मातृभाषा को विश्व की भाषाओं से श्रेष्ठ कहता है और वास्तविकता यह है कि सब भाषाएं अच्छी हैं और किसी भाषा में कोई बुराई नहीं। मेरे लिए पहाड़ी की चाहत की एक ही दलील काफी है कि वह मेरी मातृभाषा है। मैं प्राय: इसी भाषा में अपने लोगों से बातचीत करता हूं। आपके पास भी हिन्दी को चाहने के लिए कोई तर्क नहीं है सिवाय इसके कि हिन्दी आपकी मातृभाषा है। फारसी की एक कहावत अनुसार लैला रा बचश्म मजनूं बदीद यानी लैला को मजनूं की आंखों से देखो।

इस सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस झगड़े में पड़ने की अपेक्षा अपनी मातृभाषा की सेवा व्यावहारिक रूप से समन्वयात्मक दृष्टिकोणों से की जाए तो अत्यधिक अच्छा है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का अपना विशेष स्थान वैधानिक रूप से स्वीकृत है। इस सत्य को कोई झुठला नहीं सकता। हिन्दी का अन्य प्रादेशिक भाषाओं से कोई झगड़ा नहीं। हिन्दी और प्रादेशिक भाषा के पक्ष या विरुद्ध कोई विवाद खड़ा न करना केवल निर्मूल है, बल्कि एक प्रकार से पांव में कुल्हाड़ी मारने वाली बात है। हिमाचल प्रदेश ने सरकारी कामकाज की भाषा पहले ही हिन्दी घोषित कर दी है। फिर मातृभाषा को सुरक्षित एवं विकसित करने के प्रयत्नों के लिए नाक भौं क्यों चढ़ाई जाती है। सर्वप्रथम यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि भाषाविद् अपना वास्तविक स्थान समझें और स्थानीय बोलियों पर नाक-भों चढ़ाना छोड़ दें, अपितु स्थानीय मुहावरों को इस दक्षता से अपनायें कि हिन्दी की लोकप्रियता को कोई हानि न पहुंचे। आंचलिक शब्दों, भावनाओं, एवं विचारों को भी राष्ट्रीय जीवन में उचित स्थान मिल सके, तो बुरा भी क्या है।

उत्तरी भारत की अनेक बोलियां हिन्दी की ही शाखाएं हैं। जैसे किसी बड़ी नदी की सहायक अनेक नदी-नाले होते हैं और बड़ी नदी को सशक्त करते हैं, परन्तु नाम बड़ी नदी का ही रहता है। यही स्थिति हिमाचल वासियों की भाषा पहाड़ी की है। जब दक्षिण के कुछ पृथकतावादी राजनीतिज्ञ प्रादेशिक भाषा को राष्ट्रभाषा हिन्दी के समक्ष खड़ा करने का असफल प्रयत्न करते हैं तो उत्तर भारतीय तर्क प्रस्तुत करेंगे। आपकी प्रादेशिक भाषा के मुकाबले हमारी भी प्रादेशिक भाषायें हैं। लेकिन हम कभी नहीं कहते कि हमारी प्रादेशिक भाषा को उस राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाए, जिसने न केवल अंग्रेजी का स्थान ग्रहण करना है, अपितु देश की एकता के सुदृढ़ सूत्रों में बढ़ना है चाहे वह अवधी है या ब्रज भाषा या राजस्थानी है चाहे मैथली या भोजपुरी या पहाड़ी। इन सबसे राष्ट्रभाषा सशक्त होगी और हिन्दी की लोकप्रियता का विस्तार भी होगा।

किसी भाषा में अनेक बोलियों का होना स्वाभाविक है। इससे परेशान होने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि विकसित भाषा की भी अनेक बोलियां हैं। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार बोली किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं जो ध्वनि रूप,

वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूप से विभिन्न होता है। किन्तु इतना भिन्न नहीं कि अन्य रूपों में बोलने वाले उसे समझ न सकें, साथ ही जिसके अपने क्षेत्र में कहीं भी बोलने वाले के उच्चारण रूप रचना, वाक्य गठन, अर्थ, शब्द समूह तथा मुहावरों आदि में कोई बहुत स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण भिन्नता नहीं है।

ठाकुर भोलूराम की खोजपूर्ण पुस्तक पहाड़ी भाषा कुल्लूई के सन्दर्भ में से स्पष्ट होता है कि कांगड़ा, मण्डयाली, चम्बयाली, कुलुबी, सिरमौरी, महासुई, आदि पहाड़ी भाषा की भौगोलिक बोलियां हैं। इन सब बोलियों में कुछ शब्दों के उच्चारण और स्वराघात को छोड़ कर अधिकांश समानता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण देखना हो तो राज्य भाषा सस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तक हिन्दी हिमाचली (पहाड़ी) शब्दावलि का अवलोकन कीजिए। जो आलोचक बात-बात पर जार्ज ग्रियर्सन का मत प्रकट करते है वे कृपया मगधी की के साथ जो बीती, उसके इतिहास से सीख सकते हैं। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जार्ज ग्रियर्सन का भाषा वर्गीकरण अन्तिम और सम्पूर्ण नहीं है। ग्रियर्सन के शोध कार्य के ऐतिहासिक महत्त्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु उनके दिखाए मार्ग पर आगे ही बढ़ना होगा।

पिछले दो दशक से पूर्व पहाड़ी को पनपने, विकसित होने, प्रोत्साहन मिलने के बहुत कम अवसर मिले। इसलिए इसमें अभी तक आधुनिकतम सूक्ष्म भावों या विचारों को गहराई से व्यक्त करने के लिए संसार की अन्य विकसित भाषा की तरह अपेक्षित सूक्ष्मता नहीं आ पाई, पर अब धीरे-धीरे पहाड़ी उस दिशा की ओर बढ़ रही है तथा वह प्रौढ़ से अप्रौढ़ होती जा रही है। हिमाचल प्रदेश के भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित काव्य धारा के चार भाग और हिमाचल अकादमी द्वारा प्रकाशित पहाड़ी लोक-रामायण, माला रे मणके, में पहाड़ी भाषा की सही अभिव्यक्ति मिली है। अकादमी की पत्रिका सोमसी और भाषा विभाग की पत्रिका हिमभारती में प्रकाशित सामग्री तथा अन्य प्रकाशनों से दिन-प्रतिदिन यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि पहाड़ी भाषा में भी गहन विचारों और भाषाओं की अभिव्यक्ति करने की पूरी क्षमता है। जैसे आज की तुलना में कल की हिन्दी अधिक सूक्ष्म और प्रौढ़ नहीं है। क्योंकि अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त होकर अभी तक हिन्दी विकसित नहीं हुई जिससे संस्कृत हजारों वर्ष पूर्व हो गई है। यही स्थिति आज हिन्दी के मुकाबले में पहाड़ी भाषा और उसकी अनेक प्रमुख बोलियों की है।

पंजाबी की 11 प्रमुख बोलियां हैं जबकि उसके एक भाषा होने में तनिक संदेह नहीं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा में अनेक बोलियों द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है। विभिन्न बोलियों के कारण भाषा विकसित होने से नहीं रुकती बल्कि इनसे भाषा समृद्ध होती है। इसी प्रकार पहाड़ी भाषा की अनेक बोलियां हैं जिनसे पहाड़ी निःसन्देह समृद्ध हुई है और होती रहेगी। इस सत्य से कोई इन्कार

नहीं कर सकता। इन सभी उपभाषा एवं उपबोलियों के एक समय विकास से किसी दिन पहाड़ी का सर्वमान्य रूप उभरेगा।

लोकतन्त्र में किसी भी लोकप्रिय सरकार के लिए जनता के हृदय तक पहुंचने का सीधा रास्ता बोलचाल की मातृभाषा ही है। मातृभाषा के माध्यम से ही उसके बोलने वालों के सुख-दु:ख, आशा, अभिलाषा और प्रत्यक्ष वास्तविक जानकारी मिल सकती है। अत: भारत के विदेशी शासक इसलिए स्थानीय भाषाओं के प्रति सजग थे। इसलिए भाषा संस्थान की स्थापना इस संस्थान का भाषा एवं संस्कृति विभाग का रूप धारण करना और हिमाचल प्रदेश कला एवं संस्कृति अकादमी की स्थापना इस दिशा में सहायक प्रयत्न थे और पहाड़ी भाषा की समृद्धि में इनकी विशेष और ऐतिहासिक भूमिका अविस्मरणीय रहेगी।

विभिन्न बाधाओं के होते हुए भी पहाड़ी भाषा में अनेक शोधकार्य हो चुके हैं। इनमें उल्लेखनीय कार्य हैं, डॉ० पद्मचन्द्र कश्यप द्वारा कुलबी लोकसाहित्य, डॉ० वंशीराम द्वारा किन्नौरी लोकसाहित्य पर, डॉ० नरेन्द्रनाथ द्वारा सिराजी बोली पर, डॉ० काशीराम आग्नेय द्वारा मंडियाली लोक-साहित्य पर, डॉ० गौतम व्यथित द्वारा कांगड़ी लोक-साहित्य, डॉ० खुशीराम गौतम द्वारा सिरमौरी लोक साहित्य, डॉ० मनोहरलाल शर्मा द्वारा क्वोंथली बोली तथा डॉ० ईश्वरदत्त शर्मा द्वारा बघाटी बोली पर शोध करने का डॉक्टरेट मिल चुका है। ठाकुर भोलू ने पहाड़ी भाषा के व्याकरण पक्ष को उभारा है। तथा श्री राम-दयाल नीरज, श्री एस०एम०एस० ठाकुर ने डॉ० एम०एस० रन्धावा तथा देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा प्रज्ज्वलित मार्ग को प्रशस्त किया है। धीरे-धीरे हिमाचल प्रदेश के कुछ प्रतिभाशाली साहित्यकार इस दिशा में अग्रसर हुए हैं। पहाड़ी कविता के चार संग्रह, पहाड़ी नाटकों, कथाओं, कहानियों एवं निबन्ध के अनेक संग्रह, भाषा विभाग एवं अकादमी ने प्रकाशित किए हैं। इसके अतिरिक्त अनेक लेखकों ने स्वतन्त्र रूप से पहाड़ी लोकवार्ता लोक-संस्कृति एवं कला की धूमिल रेखाओं को उभारने का प्रयत्न किया है। पहाड़ी गांधी बाबा काशीराम ने पहाड़ी कविता की ज्योति प्रज्ज्वलित की थी। उस प्रकाश को सशक्त करने के लिए पहाड़ी कवियों के नये स्वर उभर रहे हैं। उनमें श्री प्रार्थी, भीमदत्त काले, पीयूष, अनिल राकेशी, पहाड़ी मृणाल, भवानीदत्त शास्त्री, खेमराज गुप्त, हरिप्रसाद, सुमन, मनसाराम अरुण, गौतम व्यथित, ओम अवस्थी, नरेन्द्र अरुण, सी० आर० पी० ललित, केशव शर्मा, काहनसिंह जमाल, रामकृष्ण कौशल, सागर पालमपुरी, जयदेव किरण, शमीर कुरैशी, खजूरिया, भगतराम मुसाफर, प्रीतम प्रत्युष, अमरसिंह, हरदयाल चौहान इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रत्येक भाषा में संश्लेषण शक्ति होती है। भाषा की सीमा भौतिक सीमाओं से बंधी नहीं रही। मानव की मनोस्थिति के उतार-चढ़ाव की तरह भाषायें भी पनपती और समृद्ध होती हैं। इसलिए पहाड़ी भाषा के विकास के लिए भी हमें इसकी सहायक

उपभाषाओं में तालमेल रखने वाली विशेषताओं को प्रयुक्त प्रमुखता देनी होगी । यदि आप राहडू से किलर (पांगी) तक यात्रा करें तो आपको यह पता लग सकेगा कि पहाड़ी भाषा की कौन-सी बोली का क्षेत्र समाप्त होता है और कौन-सी बोली का क्षेत्र आरम्भ होता है । परिवर्तन इतना सहज और स्वाभाविक है कि आपको परिवर्तन का पता नहीं लग सकेगा । पहाड़ी की बोलियों की स्थिति उन मोटर सड़कों की तरह है जो 11,000 फीट की ऊंचाई से नीचे उतरती है, लेकिन यात्री को फर्क का कही पता नहीं चलता। जब आप एक से दूसरे कोने पर पहुंचते हैं तभी आपको महसूस होता है कि फासला लम्बा था और ऊंचाई में जगह-जगह फर्क आता रहा।

35 वर्ष पहले तक संचार साधनों में अभाव, जुगनुओं की भांति चमकने वाले छोटे-छोटे राज्यों में बंटा होने के कारण बोलियों में कुछ अलगाव-सा रहा, किन्तु रेशमी धागों की तरह इसका स्रोत एक ही रहा । वस्तुतः पहाड़ी में सभी बोलियां एक ही स्रोत से बनी पनपी हैं । इसलिए हमें उनके गुणों को सुरक्षित रखते हुए यह देखना है कि पहाड़ी भाषा की एक बोली का सौन्दर्य जहां तक सम्भव हो सके दूसरी बोली वाले भी समझें। पहाड़ी संस्कृति एवं भाषा की लोकपरम्परायें, लोककथायें, लोकगीत, लोककवितायें सभी का मूलरूप एक ही है। इसलिए पहाड़ी भाषा की सभी उपभाषाओं की शब्दावलि का भरपूर आदान-प्रदान अत्यन्त आवश्यक है। अभी तक इस ओर प्रबुद्ध लेखक वर्ग का ध्यान नहीं गया । अच्छा हो यदि किसी एक उपभाषा को पहाड़ी की केन्द्रीय भाषा बनाने के लिए पन्डोरा बक्स का ढक्कन न खोलें और पहाड़ी भाषा की समृद्धि के लिए सभी उपभाषाओं को ऐसे स्तर पर लाने के लिए प्रदेश के लेखक वर्ग जुट जाएं । इसी में पहाड़ी भाषा का हित है । पहाड़ी के विकास के लिए पहाड़ी भाषा को लेखक और कवि-गण को एक आचार संहिता के आधार पर आगे बढ़ना होगा । जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा यह है :

1. सभी फूल खिलते रहें । सभी भाषाओं का समान आदर हो, लोकभाषा हो या साहित्यिक, पुरानी हो या नई, सरकारी हो या गैर-सरकारी, स्वीकृत हो या अस्वीकृत, मानक हो चाहें अमानक ।

2. स्वयं भी जियो दूसरों को भी जीने दो। अपनी भाषा या बोली का भी विकास करो। दूसरों को सहयोग और सहायता दो ।

3. सभी साहित्यकार सभी उपभाषाओं के शब्दों का अपनी रचनाओं में भरपूर प्रयोग करें। वैज्ञानिक एवं साहित्यिक आलोचना एवं सुझाव प्रस्तुत करें।

4. प्रदेश की जिन उपभाषाओं को पहाड़ी की मूल धारा के रूप में मान्यता मिली, कांगड़ी कहलूरी, चम्बयाली, मंडियाली, कुलवी, सिरमौरी, महासुई, इत्यादि उन सब उपभाषाओं के अध्ययन के लिए एक उपभाषा का विद्वान दूसरी उपभाषा पर शोध प्रबन्ध लिखे, जिसका मूल उद्देश्य पहाड़ी भाषा में एकता के सूत्र ढूंढ़ना हो

विभिन्नता के नहीं।

5. सभी उपभाषायें श्रेष्ठ हैं। एक दूसरी भाषा पर कीचड़ न उछाला जाए। अपनी उपभाषा और बोली को संगठित होने में सहायता और सहयोग दें।

6. पहाड़ी की सभी उपभाषाओं पर भाषा विभाग एवं भाषा अकादमी समान रूप से सुविधा पहुंचायेगी इसके लिए सभी उपभाषा के विकास के लिए समान रूप से पैसा खर्च करने के लिए योजनायें बनाई जायें।

7. पहाड़ी की सभी उपभाषाओं के विकास के लिए स्पष्ट प्राथमिकतायें निश्चित की जायें और योजनाएं बनाकर लागू की जायें। जैसे लोकवार्ता एवं लोकसाहित्य संग्रह को प्राथमिकता देने की आश्यकता है।

8. सभी उपभाषाओं के क्रमिक विकास के लिए वर्ष भर में जो कदम उठाए जाएं, उनका ब्यौरा भाषा-विद्वानों के सामने और राज्य विधान सभा के सामने रखा जाए ताकि इन सभी साधनों द्वारा उनके समन्वित विकास के अवसर प्राप्त हो सकें।

9. पहाड़ी भाषा के विकास का मूल्यांकन करने के लिये तुरन्त एक समिति गठित की जाए जिसमें सभी उपभाषा के एक-एक प्रतिनिधि तथा सरकार द्वारा सुझाए गए नाम राष्ट्रख्याति के भाषाविद् हों। इस समिति के सदस्य सचिव हिमाचल प्रदेश भाषा अकादमी के सचिव हों। इस समिति को 6 महीने के भीतर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा जाये। ताकि प्रत्येक उपभाषा या बोली को एक जैसा अवसर मिल सके।

भारत में हिन्दी की जैसे अनेक बोलियां या आंचलिक भाषायें हैं, वैसे ही ब्रिटेन में अंग्रेजी की भी अनेक आंचलिक बोलियां हैं। परन्तु ब्रिटेन में इन बोलियों पर जैसा ठोस काम हुआ है, वैसा भारत में नहीं हुआ। अध्ययन करने पर मालूम हुआ है कि ब्रिटेन की इन बोलियों में मूर्ख के लिए 1295 शब्द हैं, पिटाई के लिए 1350 और फूहड़ स्त्री के लिए 1050। ब्रिटेन में इन बोलियों के बारे में अनुसंधान के लिए बहुत मेहनत से काम किया गया है। वहां यह अनुभव किया गया कि आधुनिक जीवन के प्रभाव से जल्दी ही वह समझ आ सकता है जबकि ये आंचलिक प्रयोग लुप्त हो जाएं। रेडियो, दूरदर्शन, समाचार-पत्र आदि संचार साधन, रेल आदि अखिल देशीय आवागमन साधन, स्कूली शिक्षा के प्रसार तथा टेकनोलोजी के विकास आदि के कारण ब्रिटेन में भाषा का द्रुतगति से मानकीकरण हो रहा है और डर है कि ये आंचलिक भाषायें शायद जल्दी ही मर जायेंगी। इसीलिए वहां इन भाषाओं को कम से कम इनिहास में जीवित रखने के लिए इनके कोष तैयार किए गए हैं। 1973 में ब्रिटेन में अनेक विद्वानों ने मिलकर इंग्लिश डायलेक्ट सोसाइटी की स्थापना की थी जिसने यह सिफारिश की थी कि प्रान्तीय शब्दों का एक कोष तैयार किया जाना चाहिए। इस भाषा सोसाइटी के प्रयत्नों के फलस्वरूप जोसेफ राइट ने **"इंग्लिश डायलेक्ट डिक्सनरी"** की रचना की थी। उसके बाद 1950 से

1961 तक 11 वर्ष प्रो० हैरल्ड आर्टन ने कोष संग्रह के लिए अध्यन किया। उन्होंने अपने आदमी आंचलिक प्रयोगों की खोज के लिए तमाम देहाती इलाकों में फैलाये और उन्होंने लोगों से मिल-मिलकर इन शब्दों और प्रयोगों का संग्रह किया था जिसके फलस्वरूप 'ए वर्ड ज्याग्रफी ऑफ इंग्लैंड' तैयार हुई।

हिमाचल प्रदेश में भी यदि इस प्रकार का उद्योग किया जाए तो वह न केवल दिलचस्प और ज्ञानवर्धक होगा, बल्कि आंचलिक प्रयोगो के इस्तेमाल से भाषा को अधिक मुहावरेदार और सशक्त बनाने में सहायता ही मिलगी। अभी ऐसा कोई डर नहीं है कि आंचलिक बोलियां आधुनिक साधनो के प्रभाव से जल्दी लुप्त हो जाएंगी तो भी ऐसा प्रयत्न यदि किया जाए ता वह बहुत लाभकारी हो सकता है। अमरीका तथा ब्रिटेन आदि में तो स्लैंग शब्दों का खूब प्रयोग हाता है और उससे भाषा जानदार हो जाती है। भारत में हिन्दी आदि भाषाओं को भी खूब जानदार बनाया जा सकता है। परन्तु इसके लिए यह बुनियादी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। यह कार्य बहुत आसान नहीं है। इस काम को हिमाचल का भाषा विभाग और अन्य भाषा संगठन अपने हाथ में ले सकते हैं। जो लोग विश्वविद्यालयों के लिए भाषा अनुसन्धान कार्य करते हैं वे भी यदि तत्सम्बन्धी अध्ययन में लगें तो काफी महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है।

स्पष्ट निर्देशन के अभाव में पहाड़ी भाषा के विकास पर लगाया गया धन, शक्ति एवं साधनों का अपव्यय ही समझा जाएगा। इसलिए प्रत्येक संस्था, योजना, आन्दोलन और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ समय के अन्तर के साथ मूल्यांकन प्रस्तुत विषय के विकास में सहायक रहता है नहीं तो उस वजन लेने वाली मशीन की तरह दशा होगी, जिसमें आप पैसा तो डालते हैं परन्तु वह आपको वजन नहीं बता पाती। इसलिए उस मशीन को खोल कर ठीक करने में ही बुद्धिमता है।

2

हिमाचली लोकसाहित्य

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास के निरन्तर आगे बढ़ते चरणों में, जब आर्यों का समाज सुसंस्कृत और आभिजात्य बन गया तब उनकी लोकभाषा भी परिनिष्ठित होकर संस्कृत बन गई। किन्तु उसमें निहित लोकभाषा का वर्चस्व इतना बलवान और प्रभावशाली था कि उसने अपने ऊपर किसी भी क्षेत्रीय अथवा संकीर्णतावादी लेबल को चिपकने नहीं दिया। क्षेत्रों, जातियों, सम्प्रदायों, धर्मों और व्यवसायों की संकीणताओं से ऊपर उठकर संस्कृत हजारों वर्षों तक भारत और उसके बाहर के देशों में भी, भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति की भाषा के रूप मे छाई रही। उसके वर्चस्व में चिंतन की ऊंचाई थी, मनन की गहराई थी, समता का विस्तार था, ममता का अगाध सागर था, कला-साधना की अपूर्व भंगिमा थी और सबको अपने आप में आवेष्ठित कर लेने की अद्भुत क्षमता थी। तभी वह सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में आबद्ध रखकर भारतीय संस्कृति की संवाहिका के रूप में प्रतिष्ठित हो सकी थी।

संस्कृत के व्यापक प्रचार-प्रसार के काल में ही आर्य-भाषा क्षेत्र की कई लोकभाषाओं ने अपने वर्चस्व का परिचय देना प्रारंभ किया था जिन्हें संस्कृत (परिमार्जित) से पृथक् करने की दृष्टि से प्राकृत (स्वाभाविक) नाम दिया गया था। ये प्राकृत भाषाएं अपने-अपने क्षेत्रीय प्रभावों से पूर्णतः आक्रान्त थीं। इनके नामों के साथ क्षेत्रीयता भी जुड़ी हुई थी, जैसे मागधी प्राकृत, शौरसैनी प्राकृत, पैशाची प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत (यद्यपि इसका वर्तमान महाराष्ट्र प्रदेश से कोई संबंध नहीं था) आगे चलकर ये प्राकृतें साहित्यिक भाषा के पद पर भी प्रतिष्ठित हुईं और प्रायः समस्त बौद्ध और जैन-साहित्य इन्हीं प्राकृतों में निबद्ध हुए, क्योंकि बुद्ध और महावीर दोनों ने लोकजीवन के उन्नयन और पुनर्निर्माण के लिए लोकभाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यमक बनाया था। किन्तु फिर भी अपने वर्चस्व की क्षीणता के कारण ये प्राकृत भाषाएं संस्कृत की तरह सर्व-समादृत और सर्वव्यापी नहीं हो सकीं।

जब प्राकृत भाषाएं भी साहित्य के सिंहासन पर समादृत होने लगीं तब विभिन्न क्षेत्रों में पुनः लोकभाषाओं के उत्थान की लहर उठने लगी। भारतीय समाज और जीवन में यह काल अभूतपूर्व संक्रान्ति का काल था। धार्मिक क्षेत्र में एक और संघ-बद्ध बौद्ध-तत्वचिन्तन और उपासना-पद्धति से परम्परागत भारतीय दर्शन और शांकर अद्वैत-वेदान्त की टकराहट थी, और दूसरी ओर अरब सागर के उस पार से नवोत्थित धार्मिक सम्प्रदाय इस्लाम की विजय-दुन्दुभी भी भारतीय भूमि पर सुनाई देने लगी थी। इस संक्रान्ति काल में भारत के सभी क्षेत्रों के लोकजीवन और उनकी लोकभाषाओ में एक अपूर्व उत्तेजना की लहर उठती हुई दिखाई दी। भारतीय आर्य-भाषा क्षेत्रों में साहित्य के सिंहासन पर पूर्व-प्रतिष्ठित संस्कृत और उसकी सीढ़ियों पर खड़ी प्राकृतों से पार्थक्य दिखलाने के लिए लोकभाषा के इस नवोत्थान को अपभ्रंश की संज्ञा दी गई। हिन्दी लोकभाषा के इसी तृतीय उत्थान के वर्चस्व की परिणति है।

उत्तर भारत के मध्यवर्ती क्षेत्रों हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और उत्तर प्रदेश की लोकभाषा के रूप में प्रचलित हिन्दी का आदि स्वरूप जब तक उसमें साहित्य की रचना प्रारंभ नहीं हुई, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से बोली (डायलेक्ट) का था। इसलिए इस उभरती हुई लोकभाषा को खड़ी बोली की संज्ञा दी गई। किन्तु उन दिनों भी अथवा आज भी, उस क्षेत्र के किसी व्यक्ति से कोई यह पूछे कि क्या वह खड़ी बोली बोलता है तो उसका बेबाक उत्तर होगा—नहीं जी, मैं तो हिन्दी बोलता हूं।

हिन्दी भारत के उस क्षेत्र की लोक भाषा रही है जिसे भारत का भौगोलिक हृदय कहा जा सकता है। इस क्षेत्र के लोकजीवन और उसकी लोकभाषा को देश को उसकी समग्रता में देखने, समझने, परखने और आबद्ध रखने की दृष्टि और शक्ति प्राप्त होती रही है। इस प्रकार लोकभाषा हिन्दी को एक ओर अंतःशक्ति सम्पन्न होने और दूसरी ओर इस व्यापक देश के दूर स्थित भागों के घनिष्ट सम्पर्क में आने का अवसर मिलता रहा हैं।

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व जब लोकभाषा हिन्दी के इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृत की विविध धाराएं प्रवाहित होने लगीं तब उन चिंतनधाराओं और नव जागरण की संवाहिका बनकर हिन्दी लोकभाषा से ऊपर उठकर साहित्य की भाषा के रूप में समस्त उत्तर भारत में व्याप्त हो गई। कभी सिद्ध-संतों की वाणियों में, कभी कृष्ण-लीलाओं के गान में और कभी राम-कथा-कीर्तन में इस वाणी की झंकार प्रायः सुदुर क्षेत्रों में गूंजने लगी। अपनी आन्तरिक शक्ति और तत्कालीन सांस्कृतिक पुनर्जागरण की ऊर्जा से अनुप्राणित हिन्दी एक महाप्रवाह बनकर भारतीय जन-जीवन को रस प्लावित करने लगी। लोक-रंजन और लोक-मंगल के तट-बंधों में उमड़ता हुआ यह हिन्दी रस-प्लावन एक ओर कृष्ण की लीला-भूमि, ब्रज-मण्डल की लोकभाषा ब्रज-भाषा में प्रतिष्ठित हुआ तो दूसरी ओर राम-कथा की पृष्ठभूमि अवध की लोकभाषा अवधी में।

और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के महान वर्चस्वी कवि सूर और तुलसी का अविर्भाव हुआ जिनके अनुपम व्यक्तित्व और कृतित्व से हिन्दी साहित्य आज भी देदीप्यमान है। अपना माधुर्यपूर्ण सरसता और कोमल-कान्त पदावली के कारण ब्रज-भाषा ने सुदूर बंगाल, उड़ीसा और आसाम के कृष्ण-भक्त कवियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि उनकी भाषा को ब्रजबली की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा। इस ब्रजबलि का व्यक्तित्व इतना आकर्षक और प्रभावशाली था कि आधुनिक युग के कवि-शिरोमणि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उस भाषा में वैसी ही रचनाएं प्रस्तुत करने का लोभ-संवरण नहीं कर सके। उनकी भानुसिंहेर पदावलि ब्रजबली-साहित्य के इसी आकर्षक प्रभाव का परिणाम है।

इसी संदर्भ में यदि हम आज हिमाचली लोकसाहित्य के विकास और विस्तार का मूल्यांकन करें, तो हम पाएंगे, कि हिमाचली लोकसाहित्य ने इस पहाड़ी प्रदेश में हिन्दी को लोकप्रिय बनान और उसका वर्चस्व बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और दे रहा है। इससे पहले कि हम हिमाचली लोक-साहित्य का हिन्दी के विकास में योगदान का जिक्र करें तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम लोक-साहित्य की भूमिका पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाले, तो उचित होगा।

लोकसाहित्य क्या है? इसकी विस्तृत व्याख्या असंख्य विद्वानों ने की है। मैं अनगिनत व्याख्याओं के झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। मैं तो यह मानता हूं कि भारतीय संस्कृति लोकसंग्रही संस्कृति रही है, उसका लोक बहुत विशाल है। वह किसी जाति, किसी चेहरे, किसी नस्ल, किसी की हो सकती है, उसे लोक होना चाहिए। साहित्य और लोकतत्त्व से एक ही जीवन रथ के दो चक्र हैं। दोनों के सन्तुलित विवेक से ही जीवन की व्याख्या की जा सकती है। "लोके वेदे च" यह भारतीय जीवन का प्रतिष्ठा सूत्र है। वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—"ब्रह्म के समान यदि भारतीय जीवन को चतुष्पाद माना जाए, तो उसके एक पाद की प्रतिष्ठा वेद या शास्त्रीय चिन्तन में और त्रिपाद की अभिव्यक्ति लोक के क्रियाशील जीवन में पायी जाती है।"[1]

हमारे देश के प्राचीन काल के साथ आधुनिक काल का प्रथागत बंधन रहा है। हमारे पूर्वज कैसे सोचते थे, काम करते थे, नए तत्त्वो की उद्भावना करते थे समस्त श्रुति, स्मृति, पुराण, काव्य कला, धर्म तत्त्व, राजनीति समाज तन्त्र के मर्मस्थल में उनकी जीवन शक्ति, उनकी हृदय शक्ति जागृत रहते हुए किस प्रकार सदैव सबका सृजन और संयमन करती थी। किस प्रकार समाज प्रतिदिन बढ़ता रहता, परिवर्तित होता, किस प्रकार अपने को चारों ओर फैलाता, नई स्थिति को कैसे अपने साथ सम्मिलित करता है, यही जानकारी हमें लोकवार्ता द्वारा प्राप्त होती है।

---

1. वासुदेवशरण अग्रवाल, वाग्धारा, (कलकत्ता : भारतीय ज्ञान पीठ 1966,), पृ 175.

आज भी लोकजीवन में अनेक मंगलात्मक विधानों और आचारों से सम्पन्न है। शास्त्राचार लोक से ही प्रमाणित होता है और लोकाचार भी शास्त्र बनकर ही प्रतिष्ठित होता है। इसीलिए प्राचीन संस्कृति की रेशम डोर में जकड़ा हुआ लोकसाहित्य मानव पीढ़ियों के सुख-दुःख की गाथा, जिसमें जीवन की हरी अमर बेल चारों ओर लिपटी है, ओज-मयी है। लोकसाहित्य लोकमानस में सनातन रीति-नीतियों के अन्तर्मुख नियम से समन्वित और धरती की रौंदी हुई मिट्टी की महिमा से मंडित संसार की अनमोल निधि है। शिष्ट साहित्य के गगनचुम्बी मन्दिर के निर्माण में लोकसाहित्य को काल की उदर दरी के नीचे नींव की प्रथम शिला के रूप में गढ़े रहने का श्रेय प्राप्त है। इसलिए यदि शास्त्र को भारतीय संस्कृति की दाहिनी आंख समझा जाए, जिसमें सूर्य, सविता, विवेक, ज्ञान और प्रज्ञा विद्यमान हैं, तो लोक को उसकी बायीं आंख मानना होगा, जिसमें चन्द्र है, रस है, बहाव है, भाव है। जब-जब इनमें अलगाव आया है, खडन के अवसर आए है, "तब तब लोक ने" विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में, "अपने आपको मथा है।" पुराणों में बेन की कथा आती है, वह निरंकुश शासक हो गया था, ऋषियों ने कुशों से इसे मार डाला, पर पुनः शासक की अपेक्षा हुई तो उसके शव का मन्थन किया गया, उससे पहले निषाद पैदा हुए और फिर पृथु। पृथु ने वीरान और उजाड़ पृथ्वी को बसाया। पृथ्वी से उन्होंने हिमाचल को बछड़े के रूप में खड़ा कर अन्नरूप रस दुहा। इस पृथु का भाई है निषाद, वह लोक भाव की अग्रज सन्तान है, पृथु उसके छोटे भाई हैं। पृथु शास्त्र और लोक के संयोजक सूत्र बनते है।"[2]

लोक में भरे हुए पर्व और उत्सव, लोकनृत्य, लोकगीत, लोककथाएं, व्रतों की अवदान-कहानियों, संवत्सरों का रूप संवारने वाली अनेक व्रत और उपवास, देव-यात्राएं, और मेले आदि से भारतीय संस्कृति अपना अमिट स्पन्दन प्राप्त कर रही है। लोकभाषा एवं साहित्य आकाश गंगा के समान आज भी अपनी पावनी शक्ति से साहित्य और जीवन की कल्याण-परम्पराएं अस्तित्व में आ रही हैं। अतः प्रत्येक शिष्ट साहित्य अपनी आदिम अवस्था में लोकसाहित्य ही होता है।

स्पष्ट है कि लोकसाहित्य केवल उसी विशिष्ट साहित्य का वाचक है जो हमारे समाज के निरक्षर अथवा कम पढ़े-लिखे लोगों का मनोरंजन करता है। साहित्य अथवा विशिष्ट साहित्य अपनी कृत्रिम भाषा और कृत्रिम भावों के बल पर कृत्रिम सभ्यता से अभिभूत मुट्ठी भर जन-समाज का मनोरंजन करता है तो लोकसाहित्य अपनी प्रकृत भाषा के सहारे जन-जीवन को उदात्त और सरस बनाता है। साहित्य समाज का दर्पण है तो लोक-साहित्य उसका स्पन्दन है। स्पन्दन ही जीवन है, चेतन आत्मा की अभिव्यक्ति है। जैसे स्पन्दन एक ओर चेतन की आत्माभिव्यक्ति है और दूसरी ओर वह जड़ शरीर को अनुप्राणित करता है, उसे बल प्रदान करता है, वैसे ही लोकसाहित्य एक ओर समाज की

---

2. विद्यानिवास मिश्र हिन्दू धर्म जीवन में सनातन की खोज (राधाकृष्ण, 1979) पृष्ठ 860

चेतना का द्योतक है तो दूसरी ओर उसे नित नूतन शक्ति प्रदान करता है, समय-समय पर उसमें रूह फूंकता रहता है।

लोकसाहित्य में साहित्य के तत्त्व तो विद्यमान हैं ही, इसके अतिरिक्त इनमें कुछ और विशेषताएं होती हैं। इन्हें हम संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं :—

(1) यह भावुक हृदय का तरल और सरल उद्‌गार होता है जिसकी भाषा फूल के समान कोमल, सुन्दर तथा भीनी-भीनी होती है। इसके अतिरिक्त इसके सांचे में एक विशेष प्रकार की लचक होती है।
(2) इनमें लोकपरम्परा का सजीव चित्र रहता है।
(3) जीवन की शाश्वत समस्याएं अपने प्रकृत रूप में पाई जाती हैं।
(4) राजनीति तथा इतिहास सूक्ष्म रूप धारण करके इनमें सूत्र रूप से अभिव्यक्त होते हैं।
(5) लोकसाहित्य में जातीय जीवन को सन्तुलित रखने वाले विविध अनुभव पाए जाते हैं।

लोकसाहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले डॉ० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य की परिभाषा करते हुए कहा है :—लोकसाहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें : —

(1) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों;
(2) परम्परागत मौखिक क्रम उपलब्ध भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोक-मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो; तथा
(3) कृतित्व हो किन्तु वह लोकमानस के सामान्य तत्त्वों से युक्त हो कि उसको व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।

इस परिभाषा से यह प्रकट होता है कि लोकसाहित्य में आदि मानस के अवशेष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदिम मानस को ही लोकमानस कहा जाता है और लोक मानस की परिभाषा करते हुए जैम्ज ड्रीवर ने कहा है :

> "Folk Psychology is a Psychology of people applied to the psychological study of the beliefs, customs conventions etc. of people especially primitive inclusive of comparetive study."

कालीदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते दुए उसे 'अव्याज मनोहर वपु :' अर्थात् कृत्रिमता रहित सुन्दर शरीर अथवा 'अनाघ्रातं पुष्पम्' बिना सूंघा फूल कहा है। इसी प्रकार ग्राम निवासी अथवा नगरों की अर्द्धशिक्षित जनता जब अपने सहज स्वभाव में बादल को देखकर मुग्ध मयूरी की भान्ति नृत्य करने लगती है अथवा गीत गाने लगती

है और कविता पाठ करने लगती है तभी लोकसाहित्य अथवा जन-वाङ्मय का सृजन होता है। आरम्भ में यह काव्य कविता, गीत अथवा कहानी मौखिक ही होते हैं। जिस प्रकार वेद की परम्परा श्रुति कहलाई, ठीक इसी प्रकार यह वाङ्मय बहुत काल तक लिपिबद्ध नहीं हो पाता और लोगों में परम्परागत प्रसारित होता रहता है कभी-कभी कुछ अर्द्धशिक्षित लोग इसे लिपिबद्ध भी कर देते हैं, परन्तु जब यह लोकवाणी इतनी प्रचलित हो जाती है कि तथाकथित शिष्ट समुदाय भी इसे अपने कर्ण-विवरों से बहिष्कृत नहीं कर पाता, तो विवश होकर आकर्षित हो जाता है और इसे साज-संवार कर लिपिबद्ध कर देता है। शिष्ट समुदाय की स्वीकृति मिलने पर यही लोकवाङ्मय शिष्ट साहित्य का रूप धारण कर लेता है।

भगवान बुद्ध ने जिस भाषा में जनता को उपदेश दिया वह जनता की भाषा थी। वही उपदेश कालान्तर में लिपिबद्ध होकर त्रिपिटक के रूप में सभ्य समाज द्वारा समादृत हुआ। आर्यों की प्राचीनतम पुस्तक "ऋग्वेद" में लोकजीवन और लोकवाङ्मय के नमूने स्थान-स्थान पर भरे पड़े हैं। लोकवार्ता अथवा लोकसाहित्य का शास्त्रीय अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशाब्दी से आरम्भ हुआ। इसका एक प्रमुख कारण फ्रांस की राज्य क्रान्ति है। उस क्रान्ति के साथ-साथ जन-समूह में यह भावना आई कि राष्ट्र सामन्तों से नहीं बनते, बल्कि जन-समूह से बनते हैं। जन-समूह प्रमुख है, शासक अथवा राजा गौण। जन-समूह की इस प्रमुखता के साथ जन-विज्ञान प्रमुख हुआ और परिणामतः जन-विश्वासों के कोष लोकसाहित्य का शास्त्रीय अध्ययन आगे बढ़ा।

आज लोकसाहित्य की ओर साहित्य के मनीषियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है यहां तक कि हिन्दी काव्य की नव्यतम काव्य-धारा नई कविता भी लोकसाहित्य के प्रभाव से आज अछूती नहीं कही जा सकती, अनेक कवि लोकसाहित्य में प्रयुक्त उपमाओं तथा धुनों को काव्य में स्थान देने लगे हैं। श्री धर्मवीर भारती ने तो "**कनुप्रिया**" में लोक-कथाओं के एक मूल अभिप्राय (Motif) सांस्कृतिक भाषा का भी प्रयोग किया है।

कितनी बार जब तुमने श्रद्धोन्मीलित कमल भेजा
तो मैं तुरन्त समझ गयी कि तुमने मुझे संझा बिरियां बुलाया है
कितनी बार जब तुमने अंजुरी भर-भर बेले के फूल भेजे
तो मैं समझ गयी कि तुम्हारी अंजुरियों ने किसे याद किया है
कितनी बार जब तुमने अगस्त्य के दो उजले कटावदार फूल भेजे
तो मैं समझ गयी कि
तुम फिर मेरे उजले कटावदार पावों में
तीसरे पहर-टीले के पास वाले
सहकार की घनी छांव में
बैठकर महावर लगाना चाहते हो।

जब से समाज-शास्त्र और नृ-विज्ञान का विशेष अध्ययन प्रारम्भ हुआ, लोकसाहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर भी अनेक विद्वान आकृष्ट हुए। हिन्दी साहित्य का जनपदीय आन्दोलन भी लोकसाहित्य की महत्ता का ही उद्घोष करता है।

आज भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी को महाभारत से एक सबक सीखना है :—

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर :

भारत की "लोक गंगा" की समूची अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी तभी समर्थ हो सकती है यदि वह सभी जनपदों की "खीर गंगाओं" को अपने में समेटेगी। हिन्दी का साहित्यकार जब तक विभिन्न जनपदों के लोकजीवन को खुद अपनी आंखों से निहार कर उसका अनुकथन हिन्दी में नहीं करेगा, तब तक हिन्दी विभिन्न जनपदों के खेतों की फसल की तरह उनकी अपनी चीज, उनकी अपनी पैदावर नहीं बनेगी। हिमाचल का लगभग सारा भाग हिन्दी क्षेत्र है, परन्तु हिन्दी के शिष्ट साहित्य में इस क्षेत्र के लोक-जीवन की अभिव्यक्ति अभी तक नहीं के बराबर है। हिमाचल के हिन्दी क्षेत्र ने हिन्दी के शिष्ट साहित्य को महान् साहित्यकार दिये, जिनमें चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, वृजराज, मूर्धन्य उपन्यासकार यशपाल के नाम गिने जा सकते, परन्तु हिन्दी के शिष्ट साहित्य ने अभी तक अपने इन जनपदों के लोक-जीवन की अभिव्यक्ति को स्थान नहीं दिया।

लोकवार्ताएं, लोकोक्तियां, लोकगीत, धार्मिक विश्वास, घरेलू प्रथाएं, रहन-सहन और रीति-रिवाज, प्राचीन परम्पराएं आदि लोकसाहित्य के अन्तर्गत हैं। लोक-साहित्य एक प्रकार से कण्ठस्थ मौखिक विश्वविद्यालय है जिसकी सम्पूर्ण विशेषताओं का परिचय तो सुनकर ही प्राप्त किया जा सकता है। कहा जाता है कि शिक्षा के साथ-साथ लौकिक साहित्य का ह्रास होने लगता है। In the civilization advances, poetry declines (Elcof) इसलिए लोकसाहित्य के संग्रह की ओर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है लोक मानस का प्रतिबिम्ब तो लोकसाहित्य में ही देखा जा सकता है। पाश्चात्य देशों में लोकसाहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन हुआ है और लोकविज्ञान पर बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इण्डियाना विश्वविद्यालय के स्टिथ टामसन नामक विद्वान ने "**मोटिफ इण्डेक्स ऑफ फोक लिट्रेचर**" नामक ग्रन्थ 6 खण्डों में प्रकाशित करवाया था, जिसने महती ख्याति प्राप्त की। उक्त विश्वविद्यालय में लोकवार्ता विषयक इतनी सामग्री संग्रहीत है कि कोई भी एक विद्वान जीवन-भर प्रयत्न करके भी उक्त सामग्री का सम्पूर्ण रूप में अध्ययन नहीं कर सकता। यदि हमारे देश के कुछ विद्वान भी लोकसाहित्य की विभिन्न शाखाओं को अपने विशेष अध्ययन का विषय बनाएं तो इस दिशा में बड़ा उपयोगी कार्य किया जा सकता है। सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री तो लोकसाहित्य में ही सुरक्षित रहती है। संस्कृति के भाग्नावशेषों के आधार पर जो लोकसाहित्य में छिपे पड़े रहते हैं, सांस्कृतिक इतिहास का प्रसाद खड़ा किया जा सकता है।

हिन्दी भाषा में लोकसाहित्य के संग्रह अध्ययन और प्रकाशन के अनेक उल्लेखनीय प्रयत्न हुए हैं, ऐतिहासिक दृष्टि से श्रीमन्नन द्विवेदी कृत "**सखरिया**" नामक गोरखपुर जिले के लोकगीतों का एक छोटा-सा संग्रह प्रकाशित किया था। देवेन्द्र सत्यार्थी, राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ॰ सत्येन्द्र, श्याम परमार, श्री सन्तराम, राम नरेश त्रिपाठी ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। सन्तराम जी ने "**पंजाबी लोकगीत**" तथा राम नरेश त्रिपाठी ने "**कविता कौमुदी**" (पांचवां भाग) ग्रामगीत संग्रह प्रकाशित किए। सन् 1930 के उपरान्त तो अनेक विद्वान इस दिशा में जुट पड़े। भावात्मक ढंग से सत्यार्थी जी ने लोकगीतों को प्रस्तुत किया था। आपके "**धरती गाती है**" (1949) "**धीरे बहो गंगा**" (1950), "**बेला फूले आधी रात**" (1951) और "**बाजत आवे ढोल**" (1952) महत्त्वपूर्ण लोकगीतों के संग्रह हैं। श्री राहुल सांस्कृत्यायन ने सन् 1937 में "**लोकसाहित्य**" के संग्रह के लिए आंदोलन किया था। डा० महेन्द्र सिंह रन्धावा का "**कांगड़ी लोकगीत**" सम्बन्धी कार्य सराहनीय है।

गत दशक से लोकसाहित्य के संग्रह और अध्ययन की दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न हुए हैं। राजस्थानी, भोजपूरी, छत्तीसगढ़ी, निमाड़ी, मैथिली, बुन्देलखंडी, मालवी, पहाड़ी, डोगरी आदि बोलियों के लोकगीतों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। मारवाड़ी में श्री खेतराम माली कृत "**मारवाड़ी गीत संग्रह**" श्री मखनलाल वैश्य कृत "**मारवाड़ी गीतमाला**", श्री निहाल चन्द्र वर्मा "**मारवाड़ी गीत**", तारा चन्द ओझा कृत "**मारवाड़ी स्त्री गीत**" संग्रह, श्री जगदीश गहलौत "**मारवाड़ी के ग्राम गीत,**" प्रकाशित हुए। राजस्थानी में श्री नरोत्तम स्वामी कृत "**राजस्थान रा दूहा**", तथा "**राजस्थान के ग्रामगीत**", सर्व श्री रामकरण पारीक व ठाकुर रामसिंह कृत "**राजस्थान के लोकगीत**, उल्लेखनीय है। भोजपुरी में प्रकाशित कृष्ण देव उपाध्याय कृत "**भोजपुरी ग्राम गीत**" श्री दुर्गाशंकर प्रसाद कृत "**भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस**" श्री श्याम चरण दूबे कृत "**छत्तीसगढ़ी लोकगीत**", श्री रामरायण उपाध्याय कृत "**निमाड़ी ग्रामगीत**", श्री राम इकबाल सिंह राकेश कृत "**मैथिली लोकगीत**", बुन्देलखंडी में कृष्ण चन्द गुप्त कृत "**इसुरी की पागें**", श्री श्याम परमार कृत "**मालवी लोकगीत**", हिन्दी प्रदेशों की वर्तमान बोलियों से सम्बन्धित कुछ उल्लेखनीय अध्ययन हैं।

लोकसाहित्य का अध्ययन लगभग पिछले पचास वर्षों से द्रुत गति से हो रहा है। अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, बाघेली, बुन्देलखंडी, निमाड़ी, मालवी, मारवाड़ी, राजस्थानी, गढ़वाली, कौवरी, हरियानवी, पहाड़ी, डोगरी, बंगला, उड़िया, असमिया, पंजाबी, काश्मीरी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि का लोकसाहित्य सम्बन्धी कृतियों का प्रकाशन हुआ है। इसके तुलनात्मक अध्ययन से एक तथ्य जो ज्वलन्त रूप से हमारे समक्ष प्रकट होता है वह यह कि भारत का लोकमानस एक और अखण्ड है। अपने-अपने संकुचित स्वार्थों और दृष्टिकोणों के कारण हम भले ही देश को छोटे-छोटे टुकड़ों में

बोलियों के आधार पर चाहे बांट लें, परन्तु हम उसकी सांस्कृतिक एकता को छिन्न-भिन्न नहीं कर सकते। जैसे गंगा की बाढ़ में एक के ऊपर एक मिट्टी की या बालू की तह जम जाती है जैसे ही लोकवार्ता की रीति है। जैसे केले के भीतरी गामे को उसकी बाहरी परत घेर लेती है, किन्तु उन सबके भीतर जीवन का एक ही रस भरा रहता है, वही सब को खींचता है।

दुर्भाग्य से आज मेल की अपेक्षा भेद या बंटवारे की प्रवृत्ति अधिक बलवती है। द्रविड़, नाग, यक्ष, आर्य, राजपूत, कोल, खश, किन्नर आदि संस्कृतियों के तत्त्वों की बात जब शास्त्रीय ढंग से भी कही जाती है तो उससे आपसी भेद के बीज जड़ पकड़ लेते हैं, मानो यक्ष और आर्यों में अथवा आर्य और निषादों में अथवा निषाद और किरातों में कोई भारी वैमनस्य और कलह हो और उसका उत्तराद्ध कार अपने ऊपर ओढ़ कर हम आपस में फूट का भाव उत्पन्न करते हों।

आज हमें भारतीय लोकसाहित्य को तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने होंगे, क्योंकि यही एक धरोहर हमारे भारतीय समाज की भावनात्मक एकता का एकमात्र साधन है क्योंकि यह साहित्य हमें देश की अखण्डता का सन्देश देता है तथा कुत्सित भेद भाव का निराकरण करता है। यह साहित्य हमारी अतीव महाउपलब्धि है क्योंकि इसने युग-युग से हमारे भीतर एकता की भावना का संचार किया है जिसको हम विस्तृत कर चुके हैं। इस साहित्य को नष्ट होने देना राष्ट्र के प्रति महान अपराध होगा। जिस साहित्य के शब्द-शब्द में ग्राम्य मिट्टी रस बस गई है, उसे हम कैसे भुला सकते हैं ? वह तो साहित्य के पथ पर आगे बढ़ने के लिए, फैलने के लिए, ऊंचा उठने के लिए और जड़ें पाताल तक ले जाने के लिए पग-पग पर हमें प्रेरित करेगी, उत्साहित करेगी और रचना में रंग और रस भर देगी।

हिमाचल प्रदेश शताब्दियों से ग्राम्य क्षेत्र रहा है। इसलिए इसकी ग्राम्य संस्कृति की गंध इसके श्रुति और स्मृति के सहारे जीवित लोकसाहित्य द्वारा प्रचुर मात्रा में सुरक्षित है। आज इस लोकसाहित्य के धूल-धूसरित हीरों को चुन-चुनकर सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है, क्योंकि समय की तीव्र आंधी इन्हें कहीं का कहीं उड़ा ले जाएगी या गहरी मिट्टी में सदा-सदा के लिए दफना देगी।

हिमाचली लोकसाहित्य की जब हम बात चलाते हैं, तो सहसा वेदों, पुराणों, कालीदास सरीखे विद्वानों का हिमाचल सम्बन्धी यशोगान आंखों के सामने झूल जाता है। आज तक हिमाचल सम्बन्धी भारतीय साहित्य परम्परा में असंख्य बार वर्णन आया है, जिस पर अलग से एक स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना की जा सकती है, परन्तु हम यहां पर केवल आज के सन्दर्भ में हिमाचली लोकसाहित्य का महत्त्व तथा इस पर हुए गम्भीर कार्य पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हिमाचली लोकसाहित्य का विभाजन इस रूप से कर सकते हैं :—

(1) लोक वार्ता : सिंहावलोकन
(2) लोकगीत
(3) लोककथा, लोककहानी, लोकगाथा
(4) कहावतें, मुहावरे, चुटकले, पहेलियां
(5) मिथक एवं अनुश्रुति, जादू-टोने, टोटके
(6) लोकपरम्परा, इतिहास, लोकविश्वास, रीति रिवाज, वेश भूषा
(7) लोककलाएं, लोकनृत्य, त्यौहार, मेले इत्यादि

निःसन्देह यह विभाजन और उपविभाजन पूर्णतया सार्थक नहीं माना जा सकता, क्योंकि बहुत से अंशों का परस्पर गहरा सम्बद्ध है, परन्तु यहां पृथक्-पृथक् करके लिखे गए हैं। जैसे लोककथा, लोककहानी के अन्तर्गत मिथिक एवं अनुश्रुति इत्यादि भी आ सकते हैं।

आधुनिक युग में हिन्दी के विभिन्न विद्वानों ने हिन्दी भाषा से लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता पर सारगर्भित विचार प्रकट किए हैं। इनमें श्री कृष्णानन्द गुप्त (लोकवार्ता, 1944) डॉ० दशरथ ओझा, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० सत्येन्द्र, रामनरेश त्रिपाठी, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, सूर्यकरण पारीक, एम० एस० रन्धावा, काका कालेलकर इत्यादि सरीखे मनीषियों ने लोकवार्ता एवं लोक-साहित्य सम्बन्धी सिद्धांत एवं व्यवहार पर अपना मत प्रकट कर हिन्दी में लिखने वाले साहित्यकारों का ध्यान जनपदीय साहित्य की ओर आकृष्ट किया है। हिन्दी में प्रकाशित इन विद्वानों के विचारों का हम यही निचोड़ निकाल सकते हैं कि उन समस्त परम्पराओं से प्राप्त मौखिक तथा लिखित रचनाओं की समष्टि को हम लोकसाहित्य द्वारा अभिहित कर सकते हैं, जो किसी एक अज्ञात व्यक्ति या अनेक अज्ञात व्यक्तियों द्वारा सृजित होते हुए भी आज सामान्य लोकजीवन का एक अभिन्न अंग माना जाता है जिसमें किसी जाति, समाज या क्षेत्र के लोगों की परम्पराएं, विशेष प्रवृत्तियां, आचार-विचार, रीति, नीतियां वाणी-विलास इत्यादि निहित हैं। ऐसा साहित्य सहज ही नैसर्गिक तथा मानव हृदय की भावनाओं से सीधा सम्बन्ध रखता है। वे सारी अभिव्यक्तियां व्यापक रूप में इसमें आ जाती हैं जिससे जनमानस प्रतिबिम्बित रहता है।

हिमाचल प्रदेश में लोकसाहित्य सम्बन्धी हिन्दी में गम्भीर कार्य राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित **"हिन्दी साहित्य का वृद्ध इतिहास"** (हृ० स० वृ० ई०) (षोडष भाग) तथा उन्हीं द्वारा लिखित **"किन्नर प्रदेश"** (1966) पुस्तक से प्रारम्भ समझा जाना चाहिए। हिमाचल प्रदेश के लोकसाहित्य सम्पादन में डॉ० पद्मचन्द्र कश्यप, डॉ० शमी शर्मा और हरिप्रसाद 'सुमन' का सहयोग भी उन्हें प्राप्त रहा। हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने के बाद हिमाचली लोकसाहित्य के सम्बन्ध में फुटकर लेख यत्र-तत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं, जो एक उत्साहवर्धक चिन्ह है।

हिमाचली लोकसाहित्य सम्बन्धी शोध प्रबन्धों में डॉ० पदम्चन्द कश्यप का **"कुल्वी लोकसाहित्य"**, डॉ० नरेन्द्रनाथ उखल द्वारा, **"सिराजी भाषा का अध्ययन"**, डॉ० खुशराम गौतम का **"सिरमौरी लोकसाहित्य"**, डॉ० गौतम व्यथित का **"कांगड़ी लोक-साहित्य"**, डॉ० बंशीराम शर्मा का **"किन्नरी लोकसाहित्य"**, डॉ० कांशीराम आत्रेय द्वारा **"मण्डियाली लोकसाहित्य"**, डॉ० श्यामलाल डोगरा तथा डॉ० मनोहरलाल द्वारा **"कांगड़ी एवं क्योंथली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन"** उल्लेखनीय है। इनमें से डॉ० पद्मचन्द्र कश्यप, डॉ० गोतम व्यथित, डॉ० बंशीलाल शर्मा, डॉ० श्यामलाल सरीखे विद्वानों के शोध प्रबन्ध प्रकाशित भी हो चुके हैं।

हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन एवं साहित्य पर श्री रामकृष्ण कौशल की पुस्तक **"हिमानियों के देश में"** (1966), श्री धर्मदेव शास्त्री की रचनाएं **"पांगी लाहौल"** (1958) और **"हिमाचल प्रदेश की आदिम जातियां"** (1956) श्री लालचन्द प्रार्थी द्वारा लिखित **"कुलूतदेश की कहानी"** (1972) डॉ० शमी शर्मा की पुस्तक **"पार्वती और हिमजा"** (1978) श्री हरिराम जस्टा की पुस्तक **"हिमाचल गौरव"** डॉ० गौतम व्यथित, **"हिमाचल प्रदेश की लोकसंस्कृति लोकसाहित्य"** (1981), श्री खुशीराम शास्त्री द्वारा लिखित **"कांगड़े दी संस्कृति कने लोकजीवन"** (1974) है। कान्त कात्यायन की रचना **"मण्डयाली और उसका लोकसाहित्य"** (1974) श्री नरेन्द्रवीर की पुस्तक **"हिमानी लोकसाहित्य"** (1961) एवं जनसाहित्य का **"पार्वती अंक"** (मई-जुलाई 1966) उल्लेखनीय संग्रह एवं रचनायें हैं। ये पुस्तकें हिमाचल लोकसाहित्य सम्बन्धी शोध पर आधार ग्रन्थ का काम दे सकती हैं। लेखकों ने कठिन परिश्रम एवं साधना का परिचय दिया हैं और भविष्य के लिए दिया है प्रेरणा सन्देश। लोकसाहित्य पर शोध प्रबन्ध एवं गम्भीर चिन्तन के साथ-साथ लोकसाहित्य की अनेक विधाओं पर स्वतन्त्र ग्रंथों की रचनाएं धीरे-धीरे प्रकाशित हो रही है। इसलिए यदि सबसे पहले हम हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों पर आज तक हुए कार्यों की समीक्षा करें, तो उचित ही होगा।

लोकगीत

लोकगीत निःसन्देह मानव जीवन के आन्तरिक भावों को मूर्त रूप देते हैं तो इन लोकगीतों की अजस्र धारा न जाने कब से मानव हृदय को आन्दोलित करती रही है। यद्यपि इनमें स्वर, लय, यति, गति आदि छन्द के नियमों का कोई बन्धन नहीं पाया जाता, किन्तु खेतों में हल चलाते हुए किसान, चरागाहों में भेड़-बकरी और पशु चराते हुए चरवाह, दूर कहीं वनों और खेतों में घास काटती नवयौवना के भावोद्रेक में अपनी ही लय, यति, गति द्वारा एक नए स्वर को जन्म दिया है। इस अमूल्य निधि को असंख्य लोगों ने मौखिक रूप से आज तक संजोए रखा है :—

पहाड़ो दा रैहणा चंगा ओ गद्दिया,
पहाड़ो दा रैहणा चंगा ओ।
शहरां-शहरां बिच नालू जे बगदे,
पहाड़ां च बगदी गंगा ओ।
चूड़ी दी पौड़ी रौहा हियौ,
कै मामा मेरा।
लागा पहाड़ा दा जिऔ,
कै मामा मेरा।

हिमाचल के लोकगीतों के प्रामाणिक संग्रह की दिशा में डॉ० महेन्द्रसिंह रन्धावा ने **"कांगड़ा कला, देश और गीत"** (1960), **"कांगड़ा के लोकगीत"** (1956) और **"कुल्लू के लोकगीत"** (1955), **"हिमाचल के लोकगीत"** (1960), ठाकुर भोलूराम द्वारा सम्पादित **"लामण"** श्री रोशनलाल द्वारा चार सौ लामणो का संग्रह, **"पब्बर की लहरें"** (1969), एस० एस० ठाकुर द्वारा सम्पादित **"हिमाचलीय लोकलहरी"**, डॉ० गौतम व्यथित के **"कांगड़ी लोकगीत"** (1973) बंशीराम शर्मा द्वारा सम्पादित **"स्पिति वादी के लोकगीत"** (1572) ओमचन्द हाण्डा संग्रहीत **"पहाड़ी लोकगीत"**, मेहरचन्द सुमन द्वारा संकलित **"दई जुल्फी"**, हिमाचल प्रदेश के लोकगीत संग्रह की दिशा में सराहनीय प्रयत्न है।

पुस्तक संग्रहों के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों पर अनेक फुटकर रचनाएं, हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं जैसे साप्ताहिक धर्मयुग, हिन्दुस्तान, आजकल, हिमप्रस्थ, जनसाहित्य, हिमभारती, सोमसी एवं सप्तसिन्धु में समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं। इसमें से उल्लेखनीय लेखक हैं, मियां गोवर्धनसिंह, डॉ० बंशीराम शर्मा, डॉ० कांशीराम आत्रेय, डॉ० आत्माराम, डॉ० कान्त कात्यायन, केशवानन्द, रामकृष्ण कौशल, सीताराम खजुरिया, खेमराज गुप्त, पीयूष गुलेरी, अमरसिंह चौहान, जयकुमार, डॉ० भोलूराम, हरिराम जस्टा, ठाकुर बालकृष्ण, रामदयाल नीरज, पवन पखरोलवी, चन्द्रशेखर बेबस, डॉ० मनोहरलाल, गौतम व्यथित, वेदानन्द, किशोरीलाल वैद्य, चन्द्रमणि वशिष्ठ, डॉ० श्यामलाल, डॉ० शमी शर्मा, जगदीश शर्मा, लच्छीराम सलीम, देवेन्द्र सत्यार्थी, विद्यानन्द सरैक, ओमचन्द हाण्डा इत्यादि के नाम गिने जा सकते हैं।

हिमाचल प्रदेश के बारहमासा लोकगीत, विवाह लोकगीत, संस्कार गीत, वीर गीत, धार्मिक गीत, श्रृंगार गीत जैसे विषयों पर लोकगीत संग्रह की अभी तक हम बाट जोह रहे हैं। हिमाचल प्रदेश के लोकगीत भावनात्मकगुण शिल्प विधान, स्वर लालित्य के लिए सदा ही लोकप्रिय रहे हैं। इन लोकगीतों का निस्सीम भण्डार आज भी अछूता पड़ा है। यदि हम कंठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे सुरक्षित कर सकें और हिन्दी की प्राचीन और नवीन कविता शैली पर इनका प्रभाव समझ सकें, तो यह

हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम होगा। इन लोकगीतों में पहाड़ी क्षेत्र के रस्म-रिवाजों, रहन-सहन, लोकविश्वासों एवं अन्य परम्पराओं पर प्रकाश पड़ेगा। यही नहीं, इनके संग्रह से हम हिन्दी साहित्य में नए-नए मुहावरों, कहावतों, पहेलियों और नवीन शब्दों की वृद्धि कर सकेंगे और हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा को आगे बढ़ाएंगे।

लोकगाथाएं

वैसे तो प्रत्येक लोकगीत की पृष्ठ भूमि में कोई न कोई लोककथा निहित रहती है। लोकगाथा और लोककथा में भेद केवल इतना ही है कि लोकगाथा एक लम्बे आख्यान गीत के रूप में चलती है और इसमें प्रबन्ध योजना गाथा-प्रधान न होकर रस-प्रधान होती है, जबकि लोककथा गद्यात्मक होने के साथ-साथ कथा-प्रधान या दूसरे शब्दों में घटना-प्रधान हुआ करती है। लोकगाथाओं की दृष्टि में भी हिमाचल प्रदेश का लोकसाहित्य अधिक समृद्ध है। इनके माध्यम से जहां एक ओर ऐतिहासिक और पौराणिक गाथाओं को जीवित रखा गया है, वहीं दूसरी ओर कुछ वीरगाथाएं भी हैं जिनके माध्यम से जनता में उल्लास और वीरता के संचार का प्रयास किया गया है। इन लोकगाथाओं में बलराज, ऐंचली, महादेव युकुन्तरस, गुगामल, कुल्लु के राजा मानसिंह (1618-1718), राजा प्रीतम सिंह, मामा अंगत, रामसिंह पठानिया, राजा भर्तृहरि, रणसीवीर, वीर शिरगुल, महासू, झांको पाजबा, सामा दौलतू, राजा जगता, नेगी दयारी, मदना-ऊद्ध, सती चैंखी, मोहना, गढ़ मलोण, धार देशू, मही प्रकाश, गोरखा बोइरीस, सिन्धु री टिकरी, रूपणु पुहाल, सुन्नि भूकू, रामायण, पण्डायण (महाभारत) इत्यादि असंख्य लोकगाथाएं असुरक्षित पड़ी हैं, जिन्हें सुरक्षित रखने के लिए अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुए।

लोकगाथाओं का संग्रह करने की दिशा में श्री रामदयाल नीरज द्वारा सम्पादित "**हिमाचली गाथाएं**" (1973), डॉ०गौतम व्यथित द्वारा संग्रहीत "**ढोलरन लोकगाथाएं**" (1980), हरिराम जस्टा द्वारा सम्पादित "**पहाड़ी लोकरामायण**" (1974), डॉ० पद्मचन्द्र कश्यप की पुस्तक "**कुल्वी लोकसाहित्य**" में एक अध्याय में इनका जिक्र किया है, श्री देवराज शर्मा द्वारा संग्रहीत "**गुगा जाहर पीर**" (1979) उल्लेखनीय संग्रह है। मैं तो इस प्रयत्न को तभी सफल समझूंगा जब प्रत्येक लोकगाथा की, आधुनिक पाठकों के सम्मुख वैज्ञानिक रूप से सम्पादन एवं अध्ययन प्रस्तुत किया जाए। इस दिशा में हम अभी मंजिल से बहुत दूर हैं।

लोककथाएं

साधारणतया लोककथा को हम कहानी का पर्यायवाची समझते हैं, परन्तु हम

समझते हैं कि कथा किसी के द्वारा कह कर सुनाई जाती है, लिपिबद्ध हो जाने पर लोक-कहानियां अपने मूल स्वरूप को नहीं छोड़तीं। इन लोककथाओं, कहानियों में सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक सामग्री बहुत होती है और उसमें लोकविश्वासों का भी उल्लेख रहता है। लोककथा शब्द का व्यवहार प्राय: लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए होता है जो मौखिक रूप से क्रमश: एक पीढ़ी को प्राप्त होते रहते हैं। हिमाचल की लोककथाओं को हम नौ वर्गों में बांट सकते हैं :—

1. उपदेश, साधु, धार्मिक महात्म्य, नीति एवं व्रतकथाएं
2. मनोरंजन
3. प्रेम या वीरता
4. संस्कार कथाएं
5. पौराणिक
6. हास्य
7. ऐतिहासिक एवं दंतकथाएं
8. देवी देवताओं एवं परियों सम्बन्धी
9. पशु पक्षी इत्यादि जानवरों की कथाएं

लोककथाओं के इस वर्गीकरण का भावार्थ यह नहीं कि एक कथा एक वर्ग में ही आ सकती है। प्रत्येक लोककथा में उपदेश, मनोरंजन, हास्य, शृंगार, वीरता इत्यादि का भी अंश अधिक या कम मात्रा में प्राय: विद्यमान रहता है।

हिन्दी में हिमाचली लोककथाओं को संग्रहीत करने की दिशा में श्री ध्यानसिंह कुटल हरिया की "**हिमाचल लोक कथामाला**" (1964), श्री सन्तराम वत्स द्वारा लिखा "**हिमाचल की लोककथाएं**" (1962), डॉ० गौतम व्यथित का पहाड़ी संग्रह "**पहाड़ दे अत्थरु**" (1971), श्री किशोरीलाल वैद्य द्वारा रचित "**हिमाचल की लोक-कथाएं**" (1971), श्री देवराज शर्मा द्वारा पहाड़ी में लिखित "**घाटिया री गूंज**" (1975), श्री खुशीराम शर्मा की '**कांगड़े दियां लोककथाएं**" (1975), भारत सरकार द्वारा प्रदर्शित "**पंजाब और कुल्लू की कहानियां**" (1970), श्रीमती सन्तोष "शैलजा द्वारा संग्रहीत "**हिमाचल की लोककथाएं**" (1978), रूप शर्मा द्वारा सम्पादित "**रानी और पानी**", शेष अवस्थी द्वारा सम्पादित पहाड़ी में "**स्नेहडो फुल्ल**" (1974) तथा हिमाचल भाषा अकादमी द्वारा सम्पादित "**लोककथा माला संग्रह**" के दो भाग लोककथा क्षेत्र में प्रेरणादायक सग्रह है, परन्तु इन लोक-कथाओं का अथाह भण्डार फिर भी हमारे सामने पड़ा है। धूल में पड़े इन हीरों को शीघ्र उठाना हिमाचल के कथा पारखी का काम है।

हिमाचली लोककथाओं की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं। प्राय: सुखान्त और रोचक होती हैं। इनमें उपदेश और कौतूहल की मात्रा प्रचुर मात्रा में रहती है। कथा

को मोड़ देने में देवी-देवता तथा भाग्य का पर्याप्त हाथ रहता है। नारी की सुन्दरता चांद और सूर्य को शर्माती है। इन कथाओं के (Motifs) प्रायः अनशन, बनवास, पुत्री के वर के लिए ब्राह्मण को भेजना, शक्तिशाली व्यक्ति का सात द्वार के भीतर रहना, नौलखा हार, देवी प्रकोप, पशु-पक्षियों द्वारा मानवीय बोली बोलना इत्यादि। ये लोककथाएं रामपुर, बुशहर या कुल्लू के करघों पर तैयार किए गए पशमीने और ऊन के पट्टुओं के समान बुनी हुई हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि सतत् शीघ्र एवं परिश्रम से प्रकाशित सामग्री का अध्ययन तथा प्रकाशित कथा संग्रहों का पूर्व मूल्यांकन हो, जिसमें हिमाचली लोक कथाओं की अनेक टूटी हुई श्रृंखलाओं को जोड़ने में सहायता मिल सके।

कहावतें और पहेलियां

कहावतों और पहेलियों में किसी भी जनपद के जनमानस की सहज-सुलभ प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अंकन मिलता है। कहावत एक ऐसी लोकप्रिय तथा सटीक उक्ति है जिसके द्वारा मानव-जीवन के अनुभव सार-रूप में मार्मिक ढंग से व्यंजित होते हैं। इन मर्म-वाक्यों की उत्पत्ति प्रायः बैठक घरों, सभाओं अथवा पुस्तकालयों में न होकर खेत, खलिहानों तथा समाज के अन्य सामान्य वर्गों में होती है। ये ऐसे सप्राण तथा चुभते हुए जीवन के सूत्र हैं जो जनता की जिह्वा पर निवास करते हैं। कहावतें साधारण जनता के लिए पथ-प्रदर्शक नैतिक सबल के रूप में कार्य करती हैं।

अभी तक मेरी नजरों से हिमाचली कहावतों, मुहावरों एवं पहेलियों पर कोई प्रामाणिक संग्रह नहीं गुजरा। ध्यानसिंह कटलहरिया ने हिमाचल प्रदेश की कहावतों पर एक संग्रह 1969 में प्रकाशित किया। उनके बाद बिलासपुर से प्रेम शास्त्री ने 1975 में "**पहाड़ी मुहावरों**" पर 56 पृष्ठ की पुस्तक प्रकाशित की, परन्तु कहावतों, पहेलियों का अध्ययन जिस ढंग से होना चाहिए, उस विधि का इन दो संग्रहों में अभाव खटकता है। शिल्प, हिमाचली कहावतों, मुहावरों एवं पहेलियों पर डॉ० नीलमणी उपाध्याय, पीयूष गुलेरी, हरिराम जस्टा, डॉ० मनोहरलाल, अमरनाथ, हरिप्रसाद सुमन, बद्रीदत्त शास्त्री और मनोहर शास्त्री के विद्वता पूर्ण लेख भी छपे हैं।

हिमाचली कहावतों, पहेलियों के वैज्ञानिक एवं गवेषणात्मक अध्ययन में उद्भव और विकास, विस्तार, वर्गीकरण और विभिन्न जनपदों में असंख्य कहावतों के भण्डार का संग्रह अपेक्षित है। इस दिशा में क्रमशः डॉ० कन्हैयालाल सहल, प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, मुरलीधर व्यास द्वारा सम्पादित राजस्थानी कहावतों पर तीन प्रामाणिक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसी तरह डॉ० नाथूलाल पाठक कृत "**हाड़ौती कहावतें**" एक अच्छा और मौलिक प्रयास है, हिमाचल प्रदेश के लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता के लेखकों को इन प्रकाशित पुस्तकों से दिशा निर्देशन मिलेगा, यह मेरा विश्वास है।

लोककलाएं

हिमाचल प्रदेश की लोककलाओं में लोकनृत्य, लोकनाट्यों, हस्त-शिल्प का जिक्र किया जाए तो उचित होगा। मैंने दो वर्ष पूर्व अपने शोध पत्र **"हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य का संरक्षण एवं विकास"** में लिखा था : लोकांचलों में एकता, समानता, जन मनोरंजन प्रदान करने में लोकनृत्य की भूमिका सदैव ही महत्त्व-पूर्ण रही है, क्योंक लोकनृत्य द्वारा जन-अभिरुचि, मानव के सौन्दर्य-पिपासा एवं उपासना, जनमानस की उमंगें, प्रकृति का रंग वैभव, ग्राम्य-जीवन के संघर्ष और श्रम तथा मन की बन्धनमुक्त उड़ान प्रतिबिम्बित होती है। सरलता, संवेदना, सहकारिता, स्फूर्ति, रंग वैभव तथा शक्ति के संगम लोकनृत्य में सम्पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होती है और सामाजिक एवं सांस्कृतिक संचेतना के तात्त्विक गुणों की नैतिक गरिमा प्रकट होती है। वास्तव में लोकनृत्य लोकभावना की प्राणात्मा है और इसमें लोकसंस्कृति चिरायु होकर कुसुमित होती है। चूंकि लोकनृत्यों एवं लोकनाट्यों में लोककला की जीवित सांसें होती हैं, इसलिए यह लाककला के नैसर्गिक प्रतिफलन से सीधी पहचान कराते हैं। "हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य" पर हरिराम जस्टा की एक पुस्तक 1978 में प्रकाशित हुई है। इसी प्रकार हिन्दी में लोकनाट्य सम्बन्धी हिमाचल लोक सम्पर्क विभाग ने "करियाला", पर एक 18 पृष्ठ की पुस्तिका प्रकाशित की है। इस विषय पर श्री ओमचन्द हाण्डा, श्री रामदयाल नीरज, ज्वाला प्रसाद कौशल्य, मियां गोवर्धनसिंह, श्री अमरनाथ शर्मा के लेख हिमप्रस्थ इत्यादि पत्रिकाओं में छपे हैं। हिन्दी में इस दिशा में अभी तक हिमाचल प्रदेश में सराहनीय प्रयास की आवश्यकता है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने 1971 में जसलीन धमीजा द्वारा लिखित **"भारत की लोककला और हस्तशिस्प"** स्तरीय पुस्तक का प्रकाशन किया है। इसी को आधार मानकर हिमाचल की लोककलाओं सम्बन्धी विस्तृत प्रामाणिक एवं सचित्र पुस्तक प्रकाशित की जा सकती है।

इसी तरह लोक परम्पराओं, प्रथाओं, लोकधर्म, त्यौहार, मेले, मान्यताओं, रीति-रिवाजों, लोक-विश्वासों, वेशभूषा इत्यादि पर बहुत कम लेखकों ने कलम उठाई है। **"भारतीय लोकपरम्परा में नागपूजा परम्परा"** (1982) पुस्तक में हरिराम जस्टा ने एक पूरा अध्याय हिमाचल प्रदेश में नाग पूजा परम्परा पर सम्मिलित किया है। इस विषय पर मियां गोवर्धनसिंह, मोतीराम घई, वेद आनन्द, किशोरीलाल वैध, डॉ० बंशीराम, डॉ० मैथिलीप्रसाद भारद्वाज, हरिप्रसाद सुमन और श्री ओमचन्द हाण्डा सरीखे विद्वानों के लेख **"हिमप्रस्थ एवं हिम-भारती"** में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं, परन्तु अभी भी यह क्षेत्र अछूता पड़ा है।

इधर लोकसाहित्य के सम्बन्ध में फैशन और अध्ययन दोनों प्रकार की दृष्टि रखने वाले लोगों ने गहरी रुचि दिखलाई है। एक ओर तो लोकसाहित्य की खूबियों का विशद बखान किया गया है तो दूसरी ओर कुछ रुढ़िवादी इसे असस्कृत और अत्यन्त

हेय समझते हैं, परन्तु लोकसाहित्य के बारे में तटस्थ और निर्भ्रान्त विवेचन की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। वैज्ञानिक एवं शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से, समाज-शास्त्रीय अध्ययन, इतिहास और परम्पराओं की अनेक कड़ियां जोड़ने की दिशा में अभी तक बहुत कम प्रयत्न हुआ है।

वेद भारतीय साहित्य का सबसे पुराना और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, उसकी रचना तब हुई थी जब आर्य लोग सिन्धु के दोनों ओर बसे थे। "ऋग्वेद" की रचना, जो सब वेदों में सबसे पुराना है, 2500 से 1500 ई० पूर्व मानी जाती है। वैदिक मन्त्रों को 3000 वर्ष से भी अधिक समय तक अपरिवर्तित रूप में सुरक्षित रखा गया है, जबकि 500 ई० पूर्व तक लेखन कला इतिहासकारों के अनुसार भारत में अज्ञात समझी जाती है, क्योंकि वैदिक साहित्य में कहीं भी लेखन कला की ओर संकेत नहीं है। बौद्धिक युग की कृति "त्रिपटिका" में, जिसमें बौद्ध धर्म के पवित्र नियमों का संग्रह है, 400 ई० पूर्व संग्रहीत हुई। लेखन कला की ओर संकेत मिलते हैं। परन्तु इसमें न ही पांडुलिपि और न ही पवित्र ग्रंथों की प्रतिलिपि बनाने की ओर कोई संकेत उपलब्ध होता है। बौद्ध सम्राट और चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के समय से लेखन कला के भरपूर संकेत उपलब्ध होते हैं। अशोक के समय शिलाओं एवं स्तम्भों पर देश के विभिन्न कोनों में लेख कुरेदे गए। परन्तु फिर भी किसी ग्रन्थ पांडुलिपि या लेखन सम्बन्धी किसी अन्य विधि की दिशा में अशोक के समय तक कोई महान प्रयत्न इतिहासकारों को प्राप्त नहीं हुए। स्पष्टतः लेखन कला की जानकारी होते हुए भी, साहित्यिक उद्देश्य के लिए इसका प्रयोग नहीं के बराबर था। साहित्यिक स्रोतों से यही जानकारी उपलब्ध होती है, कि वेदों को लिखित रूप में 8वीं और 9वीं शताब्दी के मध्य प्रस्तुत किया गया[1]। इस तरह से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं, कि वेदों की रचना और उन्हें लिपिबद्ध करने के बीच 2500 से 3000 वर्ष की अंतरता है। तब तक वेद और लोकसाहित्य मौखिक रूप से भारतीय समाज का मार्ग दर्शन करते रहे।

अधिक साहित्य स्मृति, श्रुति और अभिलिखित रूप में दीर्घ काल तक सुरक्षित रह सका। इस महान साहित्य को सुरक्षित रखने में अनेक कारण थे। प्राचीन भारतीय लोग बौद्धिक चेतना की परम्परा को सुरक्षित रखने में गहन रुचि रखते थे। ब्राह्मण जाति का यही पवित्र कर्तव्य था, कि वे न केवल इनका मनन मन्थन करें, अपितु उसे अपरिवर्तित रूप में कंठस्थ रख कर सुरक्षित रख कर भावी पीढ़ी तक पहुंचाएं।

प्राचीन शिक्षा पद्धति भी इस अमूल्य साहित्य को श्रुति और स्मृति के सहारे सुरक्षित रखने में सहायक थी। इसमें किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं होती थी। जब लेखन कला का आविष्कार भी हो चुका था, तब भी बहुत समय तक इस महान लोक-

---

1. ए.एस. अलटेकर : प्राचिन भारत में शिक्षा (बनारस, नन्द किशोर भ्राता, 1944) पृष्ठ 147.

परम्परा को शिक्षा के क्षेत्र में जीवित रखा गया। इस परम्परा द्वारा सारी पाठ्य सामग्री कंठस्थ रूप में शिष्य तक पहुंचाई जाती थी ओर शिष्य भी इसी तरह से इस परम्परा को आगे बढ़ाता था। इस गुरुकुल पद्धति से यह बौद्धिक परम्परा चलती रही। मौखिक रूप से समृद्ध साहित्य को सुरक्षित रखना इतना महत्त्वपूर्ण समझा जाता था, कि किसी अन्य पद्धति का आविष्कार बहुत समय तक आवश्यक नहीं समझा गया। यह शृंखला शाश्वत गुरु परम्परा द्वारा जीवित रही।

समय के थपेड़ों ने, इतिहास के उतार-चढ़ावों, विदेशी आक्रमणों से, वैज्ञानिक प्रगति से, धीरे-धीरे इस गुरु शिष्य परम्परा का ह्रास हुआ। भारतीय साहित्य, जो बहुत समय तक श्रुति और स्मृति के सहारे जीवित रहा, धीरे-धीरे लिपिबद्ध कर लिया गया है। फिर भी वैदिक एवं अन्य शास्त्रीय मन्त्रों के वैदिक परम्परा अनुसार (उच्चरण, कर्म-काण्ड इत्यादि) सुरक्षित एवं जीवित रखने के लिए भारत के कुछ मंदिरों, परम्परागत पाठशालाओं एवं साधु संतों के आश्रमों, मठों में प्राचीन परम्परा जीवित है। यही स्थिति भारतीय लोकसाहित्य परम्परा की है। परम्पराएं समाप्त होती जा रही हैं, परन्तु लोक-परम्परा में बौद्धिक चेतना का साहित्य अभी तक असुरक्षित पड़ा है, जनजातीय, पिछड़े एवं पर्वतीय क्षेत्रों में लोकसाहित्य की सुरक्षा के कोई विस्तृत एवं दीर्घकालीन योजनाएं इसे सुरक्षित रखने के लिए सामने नहीं आईं।

हिमाचल प्रदेश के समृद्ध लोकसाहित्य और कला में यहां के प्राणान्वित ग्राम्य तथा पर्वतीय जीवन की उमंगों का, उसके ह्रास और अश्रु का, बड़ा विशद चित्रण मिलता है। इसमें प्रदेश की लोकपरम्पराओं और धारणाओं की अजस्र स्रोतस्विनी बह रही है, जो कहीं तो कुछ रुक्ष-सी प्रतीत होती है और कहीं-कहीं आज भी पूरे वेग से प्रवाहित हो रही है।

हिमाचल का अधिकांश लोकसाहित्य आज भी यहां के सरल ग्रामीण नर-नारियों की जबान पर है, जो उन्होंने बाल्यावस्था में अपने बूढ़ों से सुनकर स्मरण किया। यह लोकसाहित्य स्थानीय बोलचाल की भाषा में ही सैकड़ों वर्षों तक सुरक्षित और परिष्कृत होता रहा। लोकोक्तियां, कथाएं और गीत आदि इसके प्रधान अंग हैं। लोकोक्तियों में दीर्घ समय का अनुभव-जन्य ज्ञान संग्रहीत है। लोककथाओं में सामाजिक विकास सामग्री गौण रूप में उपलब्ध है, जिनमें इतिहास की मूल कड़ियां उद्धार की बाट जोह रही है। यहां के सरस लोकगीतों में उस नैसर्गिक हिम से उज्ज्वल सौन्दर्य की गरिमा झलकती है, जिसका शब्द-चित्रण प्रकृति की गोद में स्वच्छता से पले ग्रामीण नर-नारी ही कर सकते हैं।

स्वतन्त्रता उपरान्त आधुनिक सभ्यता की बाढ़ में यह बहुप्रशंसित लोक-साहित्य एवं कला-कौशल बहुत कुछ तो नष्ट हो चुका है। युवक और युवतियों का तो कहना ही क्या, बड़े-बूढ़े तक अब जन-जीवन के प्रतिबिम्ब लोकसाहित्य से अपरिचित होने लगे हैं।

लेकिन उन ग्रामों में, जो अभी तक आधुनिक सभ्यता के संदेशवाहक नगर या यातायात के साधनों से दूर हैं—वृद्ध नर-नारियों के कंठों में अभी तक वह लोकपरम्पराएं सुरक्षित हैं। विशेषतः जिन परिवारों का पुश्तैनी पेशा ग्रामीणों का लोकनृत्य, लोकगीत और अन्य साधनों द्वारा मनोरंजन करने का रहा है, उनमें ग्राम्यगीत, नृत्य आदि अभी तक जीवित हैं। यदि आपको ऐसे व्यक्ति से मिलने का सुअवसर प्राप्त हो, तो इस पर्वतीय क्षेत्र के सुहाने अतीत की एक सुन्दर झलक मिलेगी। इन लोगों का मानसिक क्षितिज भले ही सीमित हो, पर इनका सरल जीवन किसी प्रकार भी संकीर्ण नहीं। उनमें गहनता तथा मधुरता है, एक ऐसी परिपूर्णता है, जिसका मिलना आज के तथाकथित प्रगतिशील शिक्षित समाज में दुर्लभ है।

हिमाचल की लोकसाहित्य एवं कला की रस-धारा की ओर यदि यथासमय ध्यान न दिया गया, तो डर है, लोकजीवन की यह आनन्ददायिनी पयस्विनी धीरे-धीरे कहीं सूख ही न जाए। इसलिए अब समय आ गया है कि हिमाचलीय लोकजीवन की प्रतीक इस समृद्ध निधि का महत्त्व हम पहचानें और न केवल पर्वतीय जीवन की इस रसधरा को प्रवाहित करने में सहायक हों, बल्कि इसके अध्ययन और संरक्षण द्वारा समस्त प्रदेश को प्रेरणा और उल्लास के नए स्रोतों तक ले जाएं। जिस देश में वैज्ञानिक और आर्थिक योजनाएं प्रगति की सूचक समझी जाती हैं, वहां सांस्कृतिक और साहित्यिक योजनाओं का भी कुछ कम महत्त्व नहीं समझा जाना चाहिए।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्थल पर लिखा था—"असंख्य गांवों को लेकर जो हमारा देश है, उस देश की मनोभूमि में रस का उद्भव आज तक रुक गया है। जो रस बहुत समय से नीचे के स्तरों में व्याप्त हुआ पड़ा है, वह भी दिनों-दिन गर्म हवा की गर्म सांसों से उड़ जाएगा। अन्त में प्राणनाशा मरुभूमि आगे बढ़-बढ़कर तृष्णारूपी अजगर की तरह हमारे इस गांव से गुंथे हुए देश को ग्रास करती रहेगी···एक विशेष शिक्षा के कारण देश को देखने वाली आंखें हमने खो दी हैं, झरोखे की लालटेन के उजाले के समान हमारी सम्पूर्ण दृष्टि का लक्ष्य केन्द्रीभूत हो गया है शिक्षित समाज की ओर। आज जनता का मानसिक उपवास दूर करने के लिए कोई उसकी कुछ भी सहायता नहीं करता। उनके कोई आत्मीय या अपने आदमी नहीं हैं। बेचारे अपने आप ही पहले जमाने की तलछट से ही किसी तरह थोड़ी सी सान्त्वना पाने का यत्न करते हैं और कुछ दिन बाद यह भी खत्म हो जाएगा, सारे दिन के दुःख-धन्धों के रीते तट निरानन्द घरों में दीया भी नहीं जलेगा और न गीत सुनाई देंगे। वहां बांस के झाड़ों में झींगुर झनकारेंगे, झाड़ियों में से पहर-पहर पर सियारों की बोली सुनाई देगी और उसी समय शहरों में शिक्षाभिमानियों के झुण्ड बिजली की रोशनी में सिनेमा देखने के लिए भीड़ लगाए रहेंगे।" कवीन्द्र रवीन्द्र के ये अमूल्य विचार किसी और संदर्भ में कहे जाने पर भी, हिमाचलीय लोकसाहित्य एवं कला के विषय में सामयिक एवं अक्षरशः सत्य हैं।

हमें यह कदाचित् नहीं भूलना है कि सरल ग्राम्य लोकजीवन का सच्चा इतिहास जानने के लिए जनश्रुतियों का ज्ञान आवश्यक है। मैक्सिम गोर्की के शब्दों में "इनके द्वारा फाउस्ट जैसे महान् ग्रन्थों की रचना हुई। अतीत काल से लोकसाहित्य इतिहास की प्रगति के साथ-साथ ही अपने ढंग पर आगे बढ़ता है। उदाहरणार्थ, लुई ग्यारवें, आइवन दी टेरिबिल आदि के राज्यों के बारे में लोकसाहित्य का अपना ही अभिमत है, जो उन इतिहासकारों के मत से एकदम विरुद्ध है, जिन्हे इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं कि राजा और जागीरदारों के संघर्ष का श्रमिक वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ा ? अपने काल में लोकसाहित्य ने लेनिन की गिनती भी पौराणिक महापुरुषों में ही कर ली है।"

आज के युग में पैसा और राजनीति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर इस बुरी तरह हावी हो रहे हैं कि लोकसाहित्य के प्रोत्साहन और संरक्षण की बात करना असामयिक और असंगत-सा प्रतीत होता है। साधारण व्यक्ति को जैसे इस विषय पर सोचने का अवसर ही उपलब्ध नहीं, पर सहृदय और मननशील व्यक्ति यह अवश्य अनुभव कर रहे हैं कि मानव-स्वभाव की असंगतियों, विकृतियों और इसके कुसंस्कार उसकी जीवन-व्यवस्था की अनेक कुरीतियों के मूल में हैं। इस वास्तविकता को कोरा दिवास्वप्न या आदर्शवादी भावुकता कहकर नहीं टाला जा सकता है। विश्व बन्धुत्व भावना की बात तो दूर रही, आज हम जिस परिवार, ग्राम, नगर, तहसील, जिला, प्रदेश और राष्ट्र के नागरिक हैं, उसकी लोकपरम्पराओं, धारणाओं और संस्कृति से भी निकट सम्पर्क नहीं।

पर लोकजीवन से अनभिज्ञता की बात करना ही पर्याप्त नहीं। राज्य सरकार और जनता को पारस्परिक सहयोग से लोकसाहित्य के विश्लेषण, उसकी टूटी शृंखलाओं की सम्बद्धता, उसके विकास, व्यापक संग्रह, तुलनात्मक अध्ययन और धूल-धूसरित अमूल्य रत्नों को प्रकाश में लाकर जन-कल्याण के लिए उपयोग में लाया जाता रहा, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

हमारा यह पर्वतीय प्रदेश निःसन्देह अनेक दिशाओं में प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। रेडियो और टी०वी० की ध्वनि से, चित्रपट दर्शन से और समाचार पत्र के प्रसार से लोकसाहित्य शीघ्र ही विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाएगा। परन्तु हमें इस बात को नहीं भूलना है कि हिमाचल के भावी लोकमानस के भव्य भवन को उस संस्कृति की नींव पर खड़े होना है, जो लोकसाहित्य और कला में समाहित है। किसी देश की अद्यतन भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन उसके निवासियों के विकास और ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के मर्म को प्रस्तुत करता है। लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन से प्राचीन संस्कृति के अनेक तथ्य प्रकाश में आ जाते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कला के लौकिक पक्ष को राष्ट्रोत्थान की

दृष्टि से प्रोत्साहन दिया जाए। जिस प्रदेश की कला एवं साहित्य में जन-जीवन का स्पन्दन है, वह वहां की संस्कृति का सच्चा वाहक है। लोकसाहित्य के प्रति जागरूकता इस बात का परिचायक है कि लोकजीवन करवटें बदल रहा है। राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में **"लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य के लिए सदा उपजीव्य रहा है"** और **"भविष्य में भी रहेगा। किसी देश के शिष्ट साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।"** इसलिए विद्वानों, अनुसंधान-विद्यार्थियों, लोकवार्ताकारों और हिमाचल पर लिखने वालों से इस दिशा में ठोस पग उठाना अपेक्षित है। इस बिखरी हुई लोकथाती को संजोकर मां भारती के बहुमूल्य हार की अनेक अप्राप्य कड़ियां जुड़ सकती हैं, तथा इस प्रदेश की जनता के जीवन-संघर्ष के इतिहास का आवश्यक स्रोत प्रकाश में आ सकता है।

3

हिमाचल के लोकगीत

हिमाचल प्रदेश का कोई भी पर्व या समारोह लोकनृत्यों और लोकगीतों के बिना सम्पन्न नहीं होता। लोकगीतों में यहां के जन-जीवन की अनुपम झलक मिलती है। इन गीतों में रस है और आनन्द है। हिमाचल के लोकगीत शिशु को दुलारती मां के मुख में लोरी के रूप में पनपते हैं। ये उत्सवों, त्यौहारों और मेलों पर लोकनृत्यों के साथ थिरक उठते हैं। इन लोकगीतों में सीधे-सादे भाव और विचार होते हैं। सीधी-सादी भाषा में उन्हें प्रकट किया जाता है। खंजरी, ढोलक, बांसुरी और शहनाई की तान के साथ जब लोग इन गीतों को गाते हैं, तो सब पर एक जादू का-सा प्रभाव हो जाता है।

लोकगीत कई तरह के होते हैं। प्रत्येक लोकगीत की भाषा, कथा, और गाने का ढंग (लय, ताल) अलग-अलग होता है। हिमाचल लोकजीवन सम्बन्धी इस लोकगीत का बांकापन देखिए :

लागा ढोलौ रा ढमाका
मेरा हिमाचलो बड़ा बांका
आल घानौ री हामें खेचड़ी करौ
लाओ सेबौ रै बगीचे
बामणी खै म्हारे लोईया सुथनू
पांदे लाण खै गलीचे
ऊंची ऊंची बोलौ घाएटु जानी
जड़ी बूटी रै जखीरै
तिदी चौरो म्हारै भेड़ौ औ बाकरी
पौड़ौ मौहिशि रै डेरे
लागा ढोलौ रा ढमाका
मेरा हिमाचलो बड़ा बांका

भावार्थ—हिमाचल प्रदेश बड़ा सुन्दर है। आलू, धान हम खेतों में बीजते हैं। सेबों के बगीचे लहलहाते हैं। लोईया और सुथनू हमारा पहनावा है और बैठने के लिए गलीचे रखते हैं। ऊंचे-ऊंचे पर्वतों की चोटियों पर बहुत जड़ी-बूटियां मिलती हैं। उन्हीं जगहों पर हम लोग भेड़, बकरियां, गाय, भैंस पालते हैं।

जीवन के संबल-शून्य प्रभात से ही मनुष्य में आत्माभिव्यक्ति की नैसर्गिक कला फूलती-फैलती रही है। संसार के अन्य देशों की तरह हिमाचल प्रदेश के लोकगीत भी मनुष्य की इसी स्वाभाविक रचना-कला की देन हैं। हजारों वर्षों से रौंदी हुई मिट्टी की महिमा के रूप में यहां के लोकगीत उभरते और निखरते रहे हैं। जो काव्य इस बीच मानव सभ्यता और संस्कृति के रूप में सज-संवर कर आज उन्नत रूप में हमारे सामने हैं, लोकगीत उसकी नींव की पहली शिला है।

हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में शृंगार रस को जो प्रधानता मिली है वह अन्य रसों को नहीं। लोकमानस की जो परितृप्ति इस रस में होती है अन्यत्र दुर्लभ है। शृंगारगीतों में स्त्री-पुरुषों, ननद-भाभी, प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्धी गीत हैं। इनमें अश्लीलता की दुर्गन्ध नहीं। इनमें निर्झर के निर्मल जल की भांति पावनता होती है। महासुवी लोकगीतों में शृंगार रस के दोनों रूप संयोग और वियोग स्वाभाविकता से उभरकर आए हैं। अधिकांश नृत्य गीतों की सम्पूर्ण भावभूमि शृंगार पर आधारित है। मलकू के इस गीत द्वारा प्रेमी और प्रेमिका की हृदय-व्यथा कितने सुन्दर रूप में प्रकट हुई है। संस्कृत के महाकवि कालिदास के विक्रमोवर्शी एवं शकुंतला से भी कहीं पहले हिमाचल का लोककवि मलकू लोकगीत द्वारा हृदय की कोमल भावनाओं को शब्द रूप दे उठा होगा :

नायिका—हिज बेदा ता मलकू सैयां हिज कैंई न आओ
भात चाणों तो जिरी झिजड़ी रो
आशु-ओलणे खाओ

नायक —हिज आजू ता सानड़ी पौड़ियौ
आजो दुड़कू पानी
होरे नाणिवे लोगु री बांठिणै
आजो दुड़कू पानी

नायिका—पाणी दुड़कू मलकू सैयां
मुएं छाड़ो तो जाणी
तेरे हुन्दै जै आवणे
दिदा मुंडै डाबली पाणी

नायक —मुंडे डाबली खैनी तेरी
मुंई छाड़ी थी पाई

इणोबोलो तो घरौ रा घरिया
किदा मोरै ला जाई
नायिका—जाणे दे मेरे मलकूआ
सानो सेतुई फेरी
बागौ मांजुए सरपो सैयां
टांगौ टुकौ लै तेरी
नायक—नालौ घाटौ दी बांशली बाजी
धारौ धारौ दा बिनू
तेरी झौरिये शुकदा लागा
जिणा काति रा कीमू ।
नायिका—डूंगी नालौ री कुंगशिए
सदा हरियै हरे
कि जाणा मेरे मलूक रै
कि मूकणा मौरे

भावार्थ :—कल बुलाया प्रिय मलकू कल क्यों नहीं आए ?
भात बनाया था बढ़िया लाल रंग का
आंसू के साथ खाया
—कल आ रहा था सांझ ढलते
जोर की वर्षा हो गई
सच्च कहता हूं ए सुन्दरी
जोर की वर्षा हो गई
—जोर की वर्षा आई प्रिय मलकू
मुझे मालूम है
यदि तुम आना चाहते
सिर पर कपड़ा डालकर आ जाते
—सिर पर कपड़ा तेरी कसम
मैंने ओढ़ा था
घरवाले ऐसे कहने लगे
इस समय कहां और क्यों जा रहे हो ?
—इधर उधर की बातें करना
प्रिय मलकू करना छोड़ दो
झाड़ियों आदि में सांप होते हैं
रात को न आया करो

—नदी घाटियों में बांसुरी बजाकर
पहाड़ियों पर वीणा बजाकर
तेरे विरह में ऐसे सूख रहा हूं
जैसे कार्तिक में किमू वृक्ष
—गहरे नाले में कुंगशी उगती है
जो सदा हरी रहती है। मेरा प्रेम भी ऐसा ही सदा हरा है।
मैं प्रिय मलकू से शादी करूंगी।
नहीं तो मरना पसन्द करूंगी।

घास काटती हुए, खेतों में काम करते हुए या दूर कहीं पशु चराते हुए ग्राम्य युवक युवतियां ऐसे श्रृंगारिक गीतों द्वारा हृदय की गहराईयों में डूब-डूब जाते हैं और चुन-चुनकर गीतों की सुगन्धी से वन उपवन महक उठते हैं। श्रृंगारिक गीतों में भौंर, नाटी, भूरी और लामण अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। असंख्य कड़ियों में से केवल कुछ यहां उद्धृत कर रहा हूं।

1 ऊबै देशौ दी बावड़ी हून्दै देशौ दे कूंए
झूठे दीतै वचनौ नहलदै नहलदै मूंए
2 कौ तैरै पाहुणें कौ तेरे बवारे
रोटी राखे चणिऔ आवणे पाहुणे म्हारै
3 आखी लांदी सूरमा गोरे दांदुए मौशी
लोगू दिदी बोलने मेरे रौहे मनौ दी बौसी
4 घौरौ छाड़ै आंगणै घौरौ पाछुआ डोभा
राजै रि छाड़ै नौकरी, तेरे नैयनौ दा लोभा।

सारांश : 1—जैसे ऊंचाई पर बावड़ी और मैदानों में पानी के कुएं होते हैं और वे किसी नदी द्वारा परस्पर नहीं मिलते, वैसे तुम्हारे हमारे मिलने में बहुत अन्तराल पड़ गया।

2 तुम्हारे घर कितने पाहुणे और काम करने वाले हैं, हम तुम्हारे घर पाहुणचारी करना चाहते हैं।

3 तुम्हारी सुन्दरता मेरे मन में बस गई है अब मैं लोगों की बात की परवाह नहीं करता।

4 तुम्हारे लिए घर, खेत और नौकरी छोड़ दी है। मैं तो तुम्हारी सुन्दरता में डूब गया हूं।

इसी प्रकार 'लामण' भी लम्बी तान में अपने श्रृंगारिक गहनता के लिए सदैव लोकप्रिय रहे हैं।

1 तेरी आखटी नानीयै जिन्है मोती रै दामै
हाथ पाकड़ै साथी रो एबै नी अधमौ पाणै

2 तेरी आखटी नानीयै जिन्है रामौ रै तीरौ
भोले री लागौ छातिए, सुरनौ बासिए फीरौ
3 टीपलू रे आंगणै दै बान्ही बानो रे हौलौ
छाड़े दे लि आखि रै मौटकै देखे डांगरू ढौलौ
4 झीशिए भौलकौ कान्शीयै भेजियै कामै
हाथौ भीजै ओशै, मूंहटूं दौयै रै घामै ।

सारांश :-1 तुम पर मोहित हो गया हूं, तुमने मेरा प्यार स्वीकार कर लिया है। अब आधे रास्ते पर न छोड़ देना ।

2 तुम्हारी आखें इतनी तेज हैं, कि तारे की भांति लगकर मुझे बेसुध कर कर देती हैं। बड़ी देर बाद होश आती है।

3 इन जादू भरी आंखों से लोगों को न देखो, इनके कारण कहीं लोग परस्पर लड़ पड़ेंगे ।

4 तुम इतनी नाजुक हो, कि जब सवेरे तुम काम करने खेतों में जाती हो तो ओस कण से तुम्हारे हाथ भीग जाते हैं और मुंह गर्मी से लाल हो जाता है।

'लामण' लम्बी तान से जब हवा में बिखरता है, तो सहसा कई लोग दिल थाम कर मन्त्र-मुग्ध से लोकगीत की लय में खो जाते हैं ।

हिमाचल के ग्राम्य जीवन में मेलों का प्रमुख स्थान है। इन्हीं मेलों में कितने प्रेम अंकुर खिलते हैं, लहलहाते हैं, कई टूट भी जाते हैं।

इन्हीं असंख्य लोकगीतों में एक मेले को प्रतीक बनाकर लोक-कवि ने शृंगार के कितने अछूते छोरों को छूने का प्रयत्न किया है।

ताणा बुनी ला बाणा, बीशु तौ लागौ डालिए जदौने रो
मेरे बीशुए जाणा, बीशु······
लागी पन्द्रह पींगौ, बीशु
देखे डांगरू रींगौ, बीशुए न डेंवे गोपीऐ जदौने रै
घुड़ हेगिया माटा, बीशु तो लागौ मोणीए जदौने रो
देखे राओगे काठा, बीशुए न डेवे डालिए जदौने रे
डुमौ आजा सनाटा, देव तौ आजा गोपीऐ मानाणे रा
लागौ मेरे औ शाटा, दुख तौ पौड़ा गोपीऐ जींवदै रा
जीपै दीता झलारा, फिरानु ऐते गोपीऐ मोड़ौ दा
तेरा हरा गरारा, दूरै परेणु बांठणै गोपीऐ
खाया मुलकौ सारा लीऊरी हेरे गोपीऐ आखिऐ
चैंई बीशुऔ आए, बीशु तौ लागो डालिऐ जदौने रो
तेरै जीवरे बाए, दुनिया देखे गोपीऐ मुकतै

सारांश :—जदौन स्थान पर मेले में बड़ी चहल-पहल होती है। बहुत सारे देवता और जनता इकट्ठे होते हैं। मेरी प्रिय गोपी तुम मेले नहीं जाना। तुम्हारा सौन्दर्य बांटने की वस्तु नहीं है। हजारों लोगों में सुन्दर गोपी दूर से पहचानी जाती है। चाहे कुछ भी हो मेले में तुम भी जरूर आना सभी देवी-देवता आयेंगे, सजनि ! तुम भी जरूर जाना।

लोक त्यौहारों के अवसर पर परिश्रम से बोझिल जनजीवन में, लोकगीत यहां के सेवों की तरह दैनिक जीवन में एक नया रंग और रस भर देते हैं।

ओ लालीए ओ लालिये ओ।
कांडै रे मेले खि आओ पदम देव
कांडै रे मेले खि बांकै ससते सेव
ओ लालिए ओ, कांडै रे मेले खि आओ पाणी बसरा
ओ लालिए ओ, कांडै रे मेले खि आए चैंई जरूर
ओ लालिए ओ, हाटी पजौले ठांडे पाणी ओ नालू
ओ लालिए ओ, रीशे रे कारण हिंग हिंग मेरे फूटौ चनालु
ओ लालिये ओ, हाटी पजौले मीठे सेवौ रै बूदै
ओ लालिये ओ, रीशै रे कारण हिंगे हीकड़ै फूठै

अर्थात् कांडै के मेले में रंग बिरंगे सस्ते सेव बिके। बड़ी रौनक थी। इसमें प्रेमिका को जरूर आना था परन्तु उसके न आने पर दिल में जो आग लगी वह बुझती नहीं। लाली के इस रसीले गीत में मेले का इतना सजीव चित्रण हृदय की गहराईयों में डूब जाता है और जब गीत के मधुर स्वर के साथ ढोल नगारे की थाप के अतिरिक्त शहनाई और करनाल जैसे लोक-वाद्यों की गूंज के बीच नर्तक दल शरीर के प्रत्येक अंग को थिरकन देते हैं, तो बैठे दर्शक का हृदय भी नाच उठता है।

व्यक्ति के हृदय की धड़कन-उसांस, अश्रु हास, मिलन-विरह और सुख-दुख की अभिव्यक्ति महासू के अनेक लोकगीतों में परिलक्षित हुए हैं। बहन-भाई, देवर-भावज, सास-बहू, जैसे रिश्ते के अतिरिक्त अनेक धन्धों में जैसे अध्यापक, अध्यापिका, खच्चर-वाला प्रत्येक व्यवसाय में जो भी असाधारण घटना घटी, लोककवि ने लोकवाणी में उसी घटना को गीतों का रूप देने का सदैव प्रयत्न किया है। मास्टर लायकराम गीत के साथ जो हुआ, वह उसकी मृत्यु के बाद भी लोकवाणी में गांव-गांव में और अनेक उत्सवों में आज भी गुंजरित होता रहता है।

बोलो बै देखणे रा लायकरामौ सूतरौ रा धागा
टिकरौ स्कूलौ दा लायकू मास्टरौ लागा
टिकरौ दू बदली बेटा-बेटा सावड़ै कराऔ
इहरौ सै बोल्दै लागी लायकु रि माऔ
देखो नहीं इजीयै तोएं टीकरौ स्कूलौ

इणे चमको सुरजौ जाणी कौलो रो फूलौ
खांगटै रै खौलै दि लागि रिमझिम नाटी
आछा नाचै मास्टरा कल हेरना काटी
मां रुओ लायकरामौ रि घूघति जय गुणै
माटीय पणमेसरा इन्हौ लोकड़ौ रा कुणौ

अर्थात् अति सुन्दर मास्टर लायकराम टीकर में अध्यापक नियुक्त हुआ। मां उसकी बदली सावड़ा करना चाहती थी। परन्तु उसका दिल टीकर स्कूल में लग गया था, जहां किसी युवती से प्रेम करने पर उसे मार दिया गया। मां रो-रोकर पूछती है कि अब इन बच्चों का कौन होगा।

इस प्रकार लोकगीत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, व्यक्ति और जनसंस्कृति के प्रत्येक स्तर पर प्रभाव डालने की क्षमता रखते हैं।

दीर्घकाल से हिमाचल के ग्राम्य गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाये जाते रहे हैं। फिर भी नए लोकगीतों का सृजन होता रहा है और होता रहेगा। बहुत से लोकगीत चिर प्राचीन होते हुए भी चिर नवीन से लगते हैं। सती चेंखी का यह लोकगीत लगभग 150 वर्ष से भी अधिक पुराना होते हुए ग्राम्य जनता में लोकप्रिय है—

हाटुए पौड़ी टीरौ गाय भंवरू धूंई
कालिए रांडै बादलीयै कोदिए न मुई
टजी मौरू टंजी गोये हट.औ री टीगै
कादेडू आछा माटिए पवारिआ बजीरौ
बशदे डैवि चैंकिए आगुए थाटै
एकि आओ आदमी बै कोटली बाटै
सौंगी लाई हौजरूऐ धावड़ी नौखी
और आयै सारै नीरै बिष्टै मोखी
भाईया बोलूं मदनु वा सोचियों का तेरै
छुरी कटारौ आणी ओरू चौलणौ मेरै
धैनै तेरो देखीए सिंहणी रौ हीयो
छुरे कटारे संगै जौहरौ कीयो

इस गीत में सती चेंखी ने अपने पति की अकस्मात् युद्ध में मृत्यु प्राप्त करने पर जल मरने की लोककवि ने सती को जो श्रद्धांजलि अर्पित की है, उसका भाव गद्य में उतारना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

लोकगीत जनजीवन की भाव अभिव्यक्ति तो होते ही हैं, किन्तु प्रत्येक लोकगीत अंकित नहीं होता। जहां वे अंकित हो जाते हैं, देश, काल और परिस्थिति की छाया उनमें बोलती है। जीवन का रंग उनमें चमकता है। कठिन पवर्तीय जीवन और विरह

व्यथा कितने सुन्दर रूप में **'जवाना सिंघिया'** गीत में उभरी है।

हाय जवाना सिंघिया-बांकै जवाना सिंघिया
आर धारौ दि बाकरी चौरौ, पारि धारौ दे गोरू
तांई बिना सिंघिया होव जलि जलि मौरू
हाय जवाना सिंघिया।
पारलै गांव री बागुरो नाएं चीली री पड़ी चटाव
घौरै आए देखदोरहा में मिलने रा चाव
हाय जवाना सिंघिया

अर्थात् सिंघिया युवक के बिना युवती का पशु चराने का कार्य अत्यन्त सूखा-सा है। हेमन्त ऋतु में जब बर्फ गिरने के साथ तूफान आता है तब उस परिस्थिति में सहसा सिंघिया से मिलने की उत्कंठा बढ़ जाती है।

हिमाचल के लोकगीतों में भी अन्यत्र लोकगीतों की भांति कुछ नियमों का अपरोक्ष रूप से पालन किया जाता है। इनमें कुछ आदर्शों का अवश्य पालन होता है, जो परम्परा को किस सुन्दरता से निभाया है:—

फुले तौ कौरौलो ऐरे फुलाड़ु, डाले फुलौ असोर राए
असारे राए गै नैनो लाड़ीवै, डाले फुलौ असोर राए।
आपु तौ चालेगै घनी जातेरै, घरै झाड़ा शाणाटु लाऐ।
शाणाटु लाएवै नैनोलाड़ीऐ ... ...
हुंदी तौमेरीऐ हैरे नदीऐ, ऊबे मलै गीरै लै कबैगै।
गीरैले कवैगै नैनोलाड़ीऐ, ... ।
छाती तौ लाऊ, में, हेरे घुडिऔ, बुरा तौ भाजौ ला तबै लौ।
भाजोला बबैगै नैनोलाड़ीऐ, ...
बड़ै तौ नहीं गै हेरे गीरना, आदैमे हुऔ लै सबैरै।
आदमे सवैगै नैनौ लाड़ीऐ ... ...।
चीणैअ नीऊगै हैरे भी खरै, ढालिऔ आणौ पतालै तो।
आणो पतालै लौ वैनोलाड़ीऐ, ... ।
माणु तौ चैईगै, जीउ, लागदै, घरौ चैई खिड़ाकी हालै लो।
खिड़ाकी हालै गौ नैनो लाड़िये ... ... ।
हाथौ बोलौ जोड़ऐ करू अरेजा, जीऊ न भोलै रा जाले लौ।
मेरे तु जीऊरा हैरे संगटौ, आपाणी छातीऐ रालै लो।

अर्थात् प्रेयसी घर में ताले लगाकर मेला देखने चली गई है। कब वह घर लौटेगी और कब दिल की मुरादें पूरी होंगी। इस विरह-वेदना में प्रेमी हृदय कितने ही सपनों के महल बनाता है और फिर गिरा देता है। ऐसे किसी का दिल नहीं जलाया करते।

पर अब हिमाचल में भी देश के अन्य क्षेत्रों की तरह लोकजीवन की गति बदल रही है। अब तक महासू का ग्रामीण क्षेत्र दुनिया से अलग-थलग भाग्यचक्र पर विश्वास करता हुआ दबक कर जीवन व्यतीत करता रहा था। अब नई राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार लोकजीवन की पृष्ठभूमि भी बदल रही है और लोक-कवियों की रचनात्मक प्रतिभा इसे प्रशंसा की दृष्टि से देखने लगी है। प्रस्तुत महासुई लोकगीत में हिमाचल का यथार्थ रूप कितनी सुन्दरता से उभरता है :—

कई ताज टलै, सब राज रलै, बणा देश हिमाचल रे
बणौ मिर्गे, घूरौ बादलै, गेणी भरवी तारै
फूल भरूवै केसरै, रोपे धानै भरूवै सारै
शोको काल टलै, बागौ भरै फलै, तुभी तैतै चलाचल रै।
कई ताज टलै.........

गेणी तारै, बणो मिर्गे, भरे राम
मादरी देखौ तीनौ री, जीने दुई हाथै कीये कामे
जमीदारौ रै हलै, खेचौ भरै खलै, सब नाज तलातल रे।
कई ताज टलै.........

बाओ दौ बीजणो, हेरो दौ खाणौ, सुखी कुणे नी जाणो
नवै खेचौ खोदियौ, कमावियों अपणे हाथे चैंई खाणो
बाओं लेपड़े टलै, बाओं हाढ़ही गलै, सब कुछ मुका चल रे।
कई ताज टलै.........

अर्थात् कई रियासतों को मिला कर हिमाचल प्रदेश का निर्माण हुआ, जिससे लोकजीवन में प्रगति की नई लहर-सी दौड़ गई है। खेतों में अधिक अनाज पैदा होने लगा हैं और हिमाचल के मेहनती लोग अधिक श्रम कर हिमाचल को सुन्दर बनाएंगे।

हिमाचल की जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने ग्राम्य गीतों की ओर ध्यान देना होगा। क्योंकि इन गीतों में लोक-चिन्तन, धारणाओं, रहन-सहन सुख-दुख, और लोकभाषा की सजीव झलक उपलब्ध होती है।

4

हिमाचली लोकगीतों में देशभक्ति

देशभक्ति से मेरा अभिप्राय है अपनी जन्मभूमि से पवित्र प्रेम और उसके प्रति समर्पण भावना। यह एक ऐसी पवित्र भावना है जिसने मनुष्य को स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि परमार्थ के लिए प्रेरित किया। इस भावना से ओत-प्रोत व्यक्ति केवल अपने लिए नहीं जीता, वह देश और उसके निवासियों के कल्याण के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है। इतिहास में ऐसे असंख्य उदाहरण मिलेंगे, जब मनुष्य ने अपने देश की स्वतन्त्रता, अखण्डता, मान, आदर, एकता और पवित्रता के लिए प्राण न्योछावर कर दिए।

इतिहास में समय और परिस्थितियों के फलस्वरूप देश और देशभक्ति की परिभाषा बदलती रही है। कभी यह ग्राम-स्वराज का रूप धारण करती रही और कभी नगर-राज्य (City-State) का रूप धारण किया। ऐतिहासिक घटनाओं के कारण भारत की सीमायें इतिहास के थपेड़ों, हमारी अपनी कमजोरियों के कारण बदलती बिगड़ती और बचती रही हैं।

आधुनिक संदर्भ में हम देश से उस भारत-भूमि को ही अपना देश समझते हैं जो हिमालय से सागर तक राजस्थान से बंगला देश और ब्रह्मा की सीमा तक फैला हुआ है। एक समय था, जब इसकी सीमायें इससे भी विस्तृत थीं। परन्तु शास्त्र और इतिहास देश और समाज के जीवन का जो विवरण प्रस्तुत करते हैं, वह एक तरह से अधूरा और केवल शरीर भर होता है। उसका असली मानस तो है व्यक्ति के हृदय की धड़कन-उसांस अश्रुहास, मिलन-विरह और सुख-दुःख की अभिव्यक्ति में, जो लोकगीतों एवं लोकवार्ताओं के रूप में परिलक्षित होता है। सदियों से चली आई लोक संस्कृति की यह धारा देश और समाज की पृष्ठभूमि है।

स्वतन्त्रता से पहले भारत देश 600 से अधिक देशी छोटी-बड़ी रियासतों में बंटा था। इसलिए उस समय के लोकमानस पर देश की कल्पना में भौगोलिक और राजनैतिक

सीमा से बढ़कर देश की माटी की गंध अपरोक्ष रूप से उभरती रही है। लोकगीतों में देशभक्ति का जो गीत उभरा, उसमें गांव-गांव की माटी की गंध महिमा, राजनैतिक सीमाओं, राजाओं जातीय वीरों और पौराणिक वीरों के लोकगीत मानस-पटल पर सहसा थिरक उठे और लोकजीवन को आनन्दित और प्रेरित करते रहे। इनमें से बहुत से लोकगीत पुराने होते हुए भी एकदम नए लगते हैं। यह इन लोकगीतों के स्थायी महत्त्व की दलील है। यदि वे अपने युग के सामयिक चित्र मात्र होते, तो न वे चिरकाल तक जीवित रहे सकते और न वे अनेक पीढ़ियों के पश्चात् आज भी हमें नए से लगते। गांव वालों के रहन-सहन और सोचने के ढंग, सामन्तशाही सामाजिक व्यवस्था का दब-दबा और उसके विरुद्ध उठती हुई प्रतिरोध की आवाज यह सब लोकगीत की बदलती हुई परम्परा का प्रतीत है। प्रत्येक उत्सव और त्यौहार अपने गीत साथ लाता है और इसके ताने-बाने में विविध जन-समुदाओं की भावनाएं अंकित रहती है। महासुई जनपद चौपाहल क्षेत्र के इस लोकगीत से स्थानीय बानगी और स्थानीय माटी की महिमा कैसी सुन्दरता से उभरी है :—

बिशू लागा रिजंटा भोरने रा खेलो भाइया
घीयू जौलौ घेवलीयै
बाटी दो न तेलो भाइया—
जागा बड़ि नाओरे हिवणो-रो-पाणी भाइया
ठाहरी मूले ठेकरे खुमलि पाए भाईया—
जागह उतरी नाओरौ देखो ले किशो भाइया जागा
दे न खूंदा बिछुए हारते दिशो भाइया—
फागिया लाए कोलिया नगारे दे काछू भाईया—
बौड़ा हुंदा खौशिया फिरदा नी पाछू भाइया। बौड़ा—
एहरो लागा बोलदा से रण्टा ज्याला भाईया—
लाणी दा एथा कडलै छोड़ना मोहाला भाईया—
ऊंची जागह नाऊरौ किया औ मुहाला भाईया
सूता हुन्दा खौशिया जिलकी न जाला भाईया—

शब्दार्थ :—रेजंटा जगह पर मेला जुड़ रहा है। इस मेले में शत्रुओं से झगड़ा होगा। ऊंची जगह नाऊर जहां बर्फ का ठंडा पानी बहता है, गांव के लोगों ने पंचायत की और फैसला किया, कि शत्रु से मुकाबला अवश्य होगा, इसलिए तैयार होकर चलो। फगिया कोली को नगाड़ उठाने के लिए कहा गया। वीर पुरुष जब रणभूमि की ओर चल पड़ते हैं, तब पीछे नहीं हटते। अपने सोए साथियों को तैयार करने के लिए बन्दूकों को हवा में दाग दिया गया।

यह लोकगीत बहुत पुराने जातीय और गांव-गांव के युद्धों बोइयर की याद

दिलाता है और अब भी ठोड़ा या युद्ध-नृत्य में इसे प्रायः गाया जाता है।

लोककला में दरबारी कला की-सी बारीकियां नहीं रहतीं। जनशक्ति की सफल अभिव्यक्ति ही लोककला की परम्परा रही है और यही बात हम लोक गीतों का अध्ययन करते समय अनुभव करते हैं। ऐसे लगता है, जैसे प्रत्येक पीढ़ी की भावनाएं समय-समय पर पुराने लोकगीतों में निहित होती चली गई हैं।

मेरीआ गौरती भाटिआ लो, सदा करूं बन्दगे तेरे
मेरा बसि मनादे लो, हुए रौहे जीवादे मेरे
भारत री माटीआ लो, तू ओले म्हारो ठाणों
जानी का मारे गौरते लो, तखा म्हारो लो प्राणा
जलमा री माटीआ लो, माथो टेकू तांका हऊं
ज्ञाना शीखू कृष्णा रो, कामा रामा रो लो हऊं
केती बदला जुगा लो, केती बदला घत्री राजा
वदा तेरा छोरू था, वदा था तेरे प्रजा।
हिंबपति शिखरा हुंदी लो, कालो समुदरा पाणी
सिंधुवाले झेलमा लो, कृष्ण आमा ब्रह्मपुत्र जाणी
जैई तौई जिन्दड़े लो, तेई जऊं थऊ ठाणा
लोहू देऊ आपणो लो, थऊ लो मारी माना

शब्दार्थ :—प्रिय जन्मभूमि मैं सदा तुम्हें प्रणाम करता हूं। मेरे मन-प्राणों में तुम बसी हो। भारत माता तू ही हमारी शोभा है। जान से प्यारी मां, हम अपने प्राण तुम पर न्योछावर कर देंगे। हे जन्मभूमि, मैं नतमस्तक होकर तुम से यही मांगता हूं कि श्रीकृष्ण की गीता के उपदेश और श्रीराम की मर्यादा को जीवन में उतार सकूं।

मां! युग बदले, राजे बदले। सभी तेरे बेटे थे। कैलाश तेरा मुकुट है और चरणों में नीला समुद्र लहराता है। पूर्व और पश्चिम में झेलम और सिन्धु और पूर्व में ब्रह्मपुत्र तुम्हें बहलाता है।

हे मां! जब तक जीवन है, तेरी कीर्ति बनाए रखूंगा, चाहे उसके लिए मुझे जीवन बलिदान ही क्यों न करना पड़े।

कितना सुन्दर चरित्र-चित्रण हुआ है पुण्यभूमि भारत का।

जनमानस पर जातीय वीरों की वीर गाथायें ही समय-समय पर वीरता का का संचार करती है। ऐसी वीर गाथायें श्रुति और स्मृति के सहारे सैकड़ों वर्षों से जन-पदीय संस्कृति की अमर थाती बन गई हैं, जिन्हें आज भी लोग बड़ी श्रद्धा से गाते हैं और बड़े चाव से सुनते हैं। इन्हीं असंख्य लोकगीतों में से एक की झलक देखिए।

रणसी वीर

दिल्ली रूघै आगरे सैयां दूए साठे बाणोएं

बांदी मौड़ै बादलू सैयां दूए साले बाणोए
भाभी देखी बहणा रोआ साले देखी बाणोए।
ऐआ बंदी का उखला दे सैयां खारकारे पाऊ बोदे।
खलकाणडु गीउंआ रो जोआरो खारकेट पाऊ बौंदे
खल मांडू धाना रो माशा रो खारकोर पाऊ बौदे।
ऐणों पूछा रणसीआ बीरा घीऊ तेला के तेरो तेरे
घीऊ तेला मुकते सैयां ढाई घोड़ी घौराटा रींगा,
खाडू बाकरे मुक्ते सैयां रूली-ढुली डैऊए शींगा,
सार चाणो गीऊआरो जोआरा शीरे दीनें मंडले लाई,
खार चावलो माशा रो रणसीए शीरे दीनें मंडले लाई
खाडू काटो बाकरे रणसीए शीरे दीने मंडले लाई
चाचे चाची काटी, बहू काटी छेओड़ी छोटी शीरे दी
मंडले लाई, बारो नीकालो रणसीआ बीरा रातरी तोईए नी भौमि।

रणसी नाम का हिमाचल प्रदेश में कोई वीर पुरुष ने अपने देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में मुगलों से लड़ा और इस अपराध में पहले दिल्ली फिर आगरा में बन्दी बनाया गया। उसके साथ उसका बहनोई भी बन्दी हुआ। घर में कोहराम मच गया। साला बहनोई जेल में एक-दूसरे को देखकर अत्यन्त दुखी हो रहे थे। रणसी वीर ने अपने इष्ट-देव भगवान शंकर से प्रार्थना की "हमें मुक्ति दिलाओ, बन्धन से मुक्त कर दो देव।" उधर घर में बहन और पत्नी ने शिवरात्री के दिन भगवान से पूजा मंडप में यज्ञ रूप बहुत-सा अनाज चढ़ाया किन्तु हवन कुण्ड न भरा। अन्त में घर के सब लोगों ने रणसी के लिए अपने-अपने शीश चढ़ाने ही वाले थे कि उतने में भगवाने शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए। घर के जो प्राणी और बकरे आदि मंडप पर चढ़ाये गये थे जीवित हो गए। उधर वे दोनों जेल से मुक्त कर दिए गए।

इस लोकगीत में भक्ति, त्याग और समर्पण का अनोखा उदाहरण मिलता।

यह लोकगीत सारे महासू जनपद में लोकप्रिय है। वीरता देशभक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जिसे अपनी मिट्टी से सच्चा प्रेम है, वह उस मिट्टी के लिए जीता है और समय आने पर प्राणों की आहुति भी दे देता है।

इन लोकगीतों में मिथिकों और प्रतीकों का भी सहारा लिया गया है, जिससे लोकगीत को चार चांद लग गए हैं।

मुस्लिम काल के एक ऐसे ही अन्य अमर वीर थे श्री गुल। उन्होंने भी अपने समय में अन्याय और शोषण के विरुद्ध तलवार उठाई और लोकमानस पर अमर छाप छोड़ गए। यह लोकगीत जुब्बल, चौपाहल, और रोहडू क्षेत्र में लोकप्रिय है :—

दिल्ली रौहै नौगरो बे मुगल आये

शीगा आजे शिरगुला दिल्ली हैड़े खाये
रूखे-शुखे टुकड़े हैड़े शिरगुल खाये
चाली लोगा खायआं मेरे दिल्ली खै जाये
चूड़ी रे ठाकरे माणड़ो औ हौऔ
जायगोवा शिरगुला दिल्ली रै वीलो
तालकटोरे बागो दे घुनी हेड़े लाये
खिरौ री टोकणी बेलनी लाये
पुजेगा मुगलो पूचौ गाओ लाए धाये
नौरको रे टुकड़े लाए घुनी दे लाए
थागड़े ठोकने देवै रोशोरी ताणे
मुगलों रे टाबरे लाए घाणयो घाड़े
दिल्ली रे बागो दे ढिमा ढामे होए
एखली देव शिरगुले लाए मुगलौ दोये

सारांश :- दिल्ली के मुगलों से बचने के लिए वीर शिरगुल की सहायता मांगी गई । वह तैयार होकर दिल्ली पहुंचे । वहां खुब घमासान युद्ध हुआ और बहुत सारे मुगलों को वीर शिरगुल ने मौत के घाट उतार दिया ।

मुगलों का राज्य समाप्त हुआ, अंग्रेज आए । उनके अत्याचारों के विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए । प्रस्तुत लोकगीत में रामपुर बुशहर में नियुक्त एक अंग्रेज वन-अधिकारी गिबसन के अत्याचार से तंग आकर उसे मारने के षडयंत्र का जिक्र है :—

घारौ तौ गाई कशौठो गाई नाउरौ रै नालि रै
टिकरौ गाई मा पौहिले, गाई कुपड़ौ रि कालि रे
माटौरी मैरी मांटणे तू ओरि खै न बोले रे
झांगणो म्हारे गिबसणौ बौलौ ढाकडू रै औलि रे
ऐट गै मेरिये नालटीये तू बड़े कमागै रे
छाड़ै थिये गिबसनो खि कुतियो दे लागि रे
गिबसणौ बोलौ साहिबौ री मौरौ ली रांडि रे
कुत्ती री ताई तिनै पापीये दुनिया दि भांडि रे

सारांशः—कुछ लोगों ने वन अधिकारी गिबसन को मार देने का षडयंत्र बनया । जिस घर में उन्होंने षड्यंत्र बनाया, उसकी घरवाली से आग्रह किया कि यह बात किसी पर प्रकट न करें । गिबसन को एक पहाड़ी की ओट से हमने गोली मार देनी है । पर दुर्भाग्य से वह गोली उसको नहीं उसकी कुतिया पर लगी । षडयंत्रकारी पकड़े गए । निर्दयी गिबसन ने एक कुतिया को मारने के लिए सब लोगों को बदनाम किया ।

प्रथम महायुद्ध में देश की ओर से जो युवक सेना में भरती हुआ और वीरगति

को प्राप्त हुआ उसका मनोहर वर्णन लोककवि ने इस गीत में किया है।

लिखयौ री कागली गोई देवरी कि आए
ठाकरै देई मौघचन्दै बांचणी लाए।
इस आजी कागली दी फारशी ग्रेजी
नवैं नवैं छौकरे ऊटे भरतौ खि बैंदी
सड़की रै शाकरे खूबौ नौटौ रै बालु
औरै आणौ बौदियौ शिलू, लांवगी परालु
सारी गौई पब्लिक खाणे म्हारे खि होए
कैली जानि रै मामले डैवंदा न कोए
बैटा दैयो कौलैं रा सैमी आपणो नांव
भरती खि राजीआ ऐरेडेऊ ला आंव
जैमी कौरै पदैया भाईया ऐतनौ कामौ
शौ दैऊ, रुपयैं रौ साथी घमदर नामौ
आच्छा ढबौ पदैया भाईया छेई कै छता
बाप मैंरे कौलैं खि लाए मी न पता
बापौ दैओला कौला तेरा हलकिय राड़ौ
कजा मेरा बाढुआ जो जबरीय छाड़ौ
जबरीय न छाड़दा दाड़ा दैवरी रा राणा
भरती खि बापुआ मैंरै शौकीरा जाणा
जटौरा कहानु मैंरी बहणा सुखी
का लागी पदैया माईया भरती री दुखी
मां हणौ ली पदैया तेरी घुगती गुणैं
साथी संगी खि पदैया वीया तईय न कुणं
भूशौ लाये ला पदैया भाईया अकली री बातौ
शिव राम समारठु चालो कानिया भाटौ।

शब्दार्थ :—जब अंग्रेजों ने सन् 1914-19 के विश्व युद्ध के लिए सैनिकों की कमी पड़ी तो उन्होंने भारत की रियासतों के राजाओं को इसके बारे में सन्देश दिया कि वह अपनी रियासत से नौजवान लड़कों को सेना में भरती करवायें उसी की एक कापी (कोटखाई) खनैटी रियासत राणा अमीरचन्द के पास पहुंची उसने अपनी सारी प्रजा को इकट्ठा करके यह सन्देश सुनाया। सारी प्रजा चुप रही केवल एक नौजवान वीर पद्म सिंह इस कार्य को पूरा करने के लिए उठा और कहा कि सेना में भरती होने के लिए मैं जाऊंगा। राजा ने उसको 100 रुपया दिया और इनाम के तौर पर उसको घमदर नाम की जमीन का बहुत बड़ा टुकड़ा दिया। उसके मां बाप की पदम सिंह

अकेली सन्तान थी। फिर भी वह वीर अपनी वीरता का परिचय दिखाने के लिए सेना में भरती हुआ और विदेशों में जाकर अपनी वीरता का परिचय दिया। उसकी स्मृति में आज भी यह लोकगीत कोटाखाई क्षेत्र में बड़े चाव से गाया जाता है।

वर्तमान महासू जनपद इक्कीस छोटी-बड़ी पहाड़ी रियासतों को मिलाकर बना है। ये छोटे-छोटे राजा परस्पर सीमा सम्बन्धी तथा अन्य झगड़ों के कारण लड़ते-झगड़ते रहते थे। इसलिए लोकमानस के लिए वो छोटी रियासत ही एक देश का रूप धारण कर लेती थी और स्थानीय वीर अर्थात् खुद हंसते-हंसते वीरगति प्राप्त करते थे। उन्नीसवीं शताब्दी की बात है, बुशहर और जुब्बल राज्य में सीमा सम्बन्धी झगड़ा हुआ और निपटारा युद्धभूमि में ही किया गया। इस ऐतिहासिक घटना को लोककवि ने चित्रित किया है, वो प्रशंसनीय है :—

देवरै लागी महलौ दी नैं बाने री भूशो
जांहते बजीरो रो न आंनड़ू तूशौ
खून्दा बढ़ालिया माखै रा गाला
हाट छाड़ा चौंकी दा बाने जगाला
खून्दै बढ़ालिये मांजा कटोरा
बानै गाई जूझौ खून्दौ खोशो रा पौरा
मिसली कौरौ फौरदी न बानै री बौई
बाके री जोखी कौंटुआ एबे न रौई
गाड़ा पूचै घुघतुए रेका फरैवौ
हाटो रे कोछड़े दे लाऊ जरेबौ
खून्दे बढ़ालिये बोलणो बोले
उबे कौरौ शांगलो कुत्ते खि होले
बाना निआं जीतियो नोदी कनारे
आरे बोली जुब्बलौ बसाहरौ पारै

शब्दार्थ :—जुब्बल महल में जब मन्त्री को सीमावर्ती भाग हाटकोटी पर शत्रु के आक्रमण का पता चला तो उसने तुरन्त बढ़ाली खून्द को हाटकोटी सीमा पर चौकी डालने को कहा। बढ़ाली वीरों ने आज्ञा पाते ही अपनी तलवार कटार तेज की और उस वीर खश ने शत्रु को ललकारा। शत्रु चकित रह गया और कई प्रकार के छल-कपट करने लगा, किन्तु उसकी एक न चली। वीर खून्द सीमा पर विजय पाते हुए नदी तक बढ़ते चले गए। वहां से एक और जुब्बल राज्य और दूसरी ओर बुशहर राज्य रह जाता है।

इस प्रकार एक और वीर गीत में वीर देशभक्त खून्दों का वर्णन इस प्रकार किया है :—

उशी कौरा खौशिया तूमो रे रीशा
त्हारे लागा डांकरा लोऊ रे चीशा
और कौर खौशिया गौरला ओ बाता
त्हारे नाई पाईदा पाणी दे लाता

शब्दार्थ :—ऐसा कौन-सा वीर खश होगा जो तुम्हारा मुकाबला कर सकेगा। तुम्हारे डांगरे सदा शत्रु के लहू के प्यासे रहते हैं। सभी खश तुम्हारे आगे और पीछे घूमते है। किसी की क्या मजाल कि तुम्हारे आगे खड़ा रह सके।

इसी प्रकार एक बहुत पुराना वीर पवाड़ा ठंडू ठाकुर का है। बलसन के राजा जोगड़ा और उसके पुत्र हरिया ने जुब्बल की सीमा में बसे एक गीगू ठंडू नाम के ठाकुर को जुब्बल के विरुद्ध भड़काया। कुछ काल बाद उन्होंने जुब्बल के उस सीमावर्ती भाग पर अधिकार कर लिया। पर देशभक्तों ने एक होकर देशद्रोही हरिया तथा गीगू को रणक्षेत्र में ऐसे पछाड़ा कि उन्हें प्राण से हाथ धोने पड़े। लोककवि ने उस घटना को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

झीने तू औरिये कौटकौ खेड़ो
रातै स्याणी खि आम्बलौ बेड़ो
थोथी रे बागौ दा बाजी दमामा
तू मेरा नी भाणजा आं तेरा नी मामा
माठौ लागो औरिया आम्बलौ रो धीऔ
हांसने खेलणे खे गीगू री घीओ
तू जाए ने ओरिया आम्बलो रा हीला
तेरे बोल्हे नी खाईन्दा गौई ठाकरै रा ढीला
जौले मौरोली नौतिया तेरी लुजड़ी बाओ
राजै रै गाव दा कैई दे मुआ घाओ
खाये हेडे औरिया एनिये बागणे रे रीडे
बुड भाषौ जुब्बलौ खै सून रे ठीठे
बागनै दू नौतिये तौबे लाई धाओ
गूले मुआ बकरा कोये बे इये बी खाओ।

शब्दार्थ :—सीमावर्ती भाग झीना की ओर से आगे बढ़ते हुए शत्रु हरिया के आम्बल पर अधिकार करने की चेष्टा की। परन्तु जुब्बल के थोथी नामक गांव के वीर ने रणभेरी बजाते हुए शत्रु को ललकारा और चेतावनी दी कि अब प्राचीन काल से चले आ रहे हमारे तुम्हारे मैत्री सम्बन्ध टूट रहे हैं। हे हरिया! यहां खाने के लिए आम्बल का घी और मन बहलाने के लिए गीगू भेदी की पुत्रियां नहीं, अपितु वीरों से मुकाबला है। अब तुम गौई ठेकरा से आगे नहीं बढ़ सकते। यह कह कर नौतिया वीर ने अपनी लंबी

भुजाओं से शत्रु के सरदार हरिया पर प्रहार करके उसे मार गिराया । फिर उसने बगना नामक पहाड़ी के ऊंचे शिखर पर चढ़ कर शत्रु को ललकारा और व्यंग्य प्रहार किया—'मैंने तुम्हारे लिए बकरा (हरिया) मार कर रखा है, उसे खाने के लिए ले आओ।'

महासुवी लोकगीतों में देशप्रेम तथा वीरत्व कूट-कूट कर भरा है। इसका उदाहरण हमें वीर गीत से मिलता है। जुब्बल उत्तरी सीमा के पार के कनाल जुब्बल की सीमा में घुसकर कायल और देवदार के घने वन को काट कर अपना अधिकार जमाना चाहा। सीमा पर बसे पुराने जुब्वल के वीर इसे सहन न कर सके और वे शत्रु पर टूट पड़े:—

बौड़े लाये दोरेसूए घुंघलियों नाटे।
साथी जे न निणने मेरे जुब्बलौ रे काटे ।।
जीठ लाये बीजिए दे हाथ पा तँगे।
कनालौ रे पूचे छांरू कोट लाये वेगे ।।
टांरा आं बीजिया थाले ओ माशैं।
पीड़ी रा परौली दे लूदी रे पाशैं ।।

शब्दार्थ :—शत्रुओं के सरदार दरसू ने नाचने की-सी मुद्रा में जुब्बल के वीरों पर ताना कसा और कहा कि मैं जुब्बल की जमीन उठा कर तो नहीं ले जा रहा हूं, परन्तु जुब्बल के एक वीर ने अपने शत्रु को लाल आंखों से देखा और उसे लड़ने के लिए ललकार हाथ में तलवार लेकर जुब्बल का वीर शत्रु पर टूट पड़ा। पहले शत्रु की लाश ढेर हुई और उसी लाश पर दूसरे ही क्षछ बीजिए की लाश थी। विजय पाकर पीढ़ी के दुर्गा के प्रवेश द्वार पर सिर निवाया।

ऐसे ही असंख्य पुराने लोकगीत आज भी लोकजीवन में मधुरता घोलते रहते हैं। इन लोकगीतों में अतीत का जीवन, परम्पराएं और इतिहास बोलता है और माटी की गंध वायु में फैल जाती है। इन लोकगीतों में मधुरतम स्वर, असीम वेदनाएं, महान महत्त्वाकांक्षाएं, विशद कल्पनाएं, सुक्ष्म चरित्र-चित्रण और शोभनीय वर्णन उपलब्ध होता है।

महासू जनपद सेवों के लिए भी सारे देश में प्रसिद्ध है। प्रारम्भ में सेवों के बगीचे कोटगढ़ क्षेत्र में लगाये गए। इसमें अमेरिकन पादरी स्मयूल स्टोक जो बाद में हिन्दू बन गए और सत्यानन्द स्टोक नाम से प्रसिद्ध हुए। बागवानी के क्षेत्र में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। श्री स्टोक बागवानी क्षेत्र के अलावा जनजीवन में देशभक्ति के लिए लोकप्रिय हुए। लोकजीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख इस लोकगीत में सुन्दरता से उभरा है।

हिमाचला री माईए बोला झालारू बाणो

साइबा स्टोका बोला पहाड़ा ले जाणो
शिमला का डेवन्दो लागौ नारकंडा बीले
तिंदरा का नौजरा लागी बारूबागी बीले
बारूबागा री बागूरी लागी साहिबा का चीते
साहबा स्टोका आओ कोटगढ़ी हांदी भीते।
साहबा स्टोका आओ मुल्का रो लाटा
कोटगढ़ा री सड़की लागो आदमियों रो साटा
स्टोक साहबा अमरिकियों आओ ओसारी हरि
सेवे आणी बीजा के तीनी लारी मोटरे भरी
एक गाणौ साहबा, दूजी गाणी सो मीमा
स्टोक साहबे दौसी भाइओ सेवो री स्कीमा
सेवा दी भाइयो म्हारे पाई लैणी खादा
स्टोक साहबे कीओ भाइयो देशौ आजादा

शब्दार्थ :—स्टोक साहब पहाड़ में आए। शिमला से आगे नारकण्डा है उसी क्षेत्रमें बाड़ूबाग की जगह उन्हें पसन्द आई। वहां पर अमेरिका से आकर सेवों का बगीचा लगा सेवों से इस क्षेत्र की काया पलट कर दी।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई जो लड़ी गई, उस की छाप यहां के दूरस्थ ग्रामों के ऊपर भी पड़ी। गांधी की को भावभीनी श्रद्धांजलि इस लोकगीत द्वारा दी गई है :—

म्हारे देशौ रै महात्मा गांधिया, तू थिया बड़ा सैणा रे।
ऐनक, घड़ी, धोती लाएअ, एस देशौ रा बाबा वणा रे
चाला सचाई गाशे उमीर भरौ, जूठ कदि न बोला रे
राने हरि चन्दर रा ही तू, जाणु अवतार होला रे
म्हारा देश आँगरेजौ द, केश करिए था छड़ाया रे
भूखा रौआ और जेलां दा डेवा, तुई सुख न पाया रे
भगाए देशों द गोरे आदमी, देश त आजाद कराया रे
आपणे राज आफी करौ एबे, काम एरा बताया रे।
जाति पाति रा भेद मठावा, सबै एक बणावे रे।
हरिजन म्हारे सके भाईअ, एजै सन्देशे शणावे रे
नांव राखा तुई दुनिएं दा। सबी रा बापू रे
जबै आवली याद तेरी हामै रोऊंमे आपू रे।

महात्मा गांधी जी ! आप हमारे राष्ट्र में एक प्रखर प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। ऐनक, घड़ी, धोती, पहनते हुए आप इस राष्ट्र के राष्ट्र पिता थे। आपने समस्त जीवन

भर सत्यका आश्रय लिया एवं असत्य को तिलांजलि दी। हमसोचते हैं कि सम्भवत: आप सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के रूप में पुनः अवतरित हुए होंगे। हमारा राष्ट्र फिरंगियों से किस प्रकार मुक्त करवाया। आपने उपवास रखे एवं जेलों की कठोर यातनाएं झेलीं। आपका जीवन संघर्षमय रहा। अंग्रेजों को इस देश से खदेड़कर राष्ट्र स्वतंत्र करवाया। स्वराज्य की नींव डाली एवं स्वराज्य करना सिखाया। अस्पृश्यता का उन्मूलन किया तथा हमें एकता के सूत्र में पिरोया। हरिजन हमारे भाई हैं, इस संदेश को जनगण में फूंक दिया। आप बापू के नाम से विश्व भर से पुकारे जाते हैं। जब कभी आपकी याद आएगी, हम याद में स्वयं अश्रु बहाया करेंगे।

गांधी जी ने आजादी के लिए संघर्ष के साथ-साथ सर्वोदय, समाज सुधार, निर्माण कार्य और शिक्षा प्रसार पर अधिक बल दिया, इसका सरल और प्रभावशाली वर्णन इस लोकगीत द्वारा उभरा है:—

ऊंचे ऊंचे टिब्बै होले लो ऊंची ऊंची धारा,
स्याणा बोलो पदमुआ लो कोरी ला गांवों सुधारा
पहाडौ रे बासा दे होवो देखणे कि नजारा
हुंदी उबी फूलिटू फूले ऐसा साजना मुलकौ हमारा
स्याणा बोलो पदमुआ···
गांवां दे केती केती मौरा ला पाणिये नि चीशा
कुलो आड़णी आणी कूलो नाजे घो रा पीशा।
स्याणा बोलो पदमुआ···
भोलै बावले बे लोका, अनपढ़ा लो सारे
नव्वै नव्वै स्कूला लो खोलै एजी बे अरजा म्हारे।
स्याणा बोलो पदमुआ···
छोटड़े छोटड़े घोरा ला होन्दे जाणी ली डेरे
गांव दे होई लोणे बे दूरां बड़े बड़े ला फेरे
स्याणा बोलो···
गोली तुंगो दी सबे ठांवो री सफाई
पहाड़ोरा बासा ठांवों देवता री मुल्काई
स्हाणा बोलो पदमुआ लो कोरी ला गांवो सुधारा।

देश में होने वाली प्रगति से सहासू के लोग भी परिचित हैं। यह गीत देश की प्रगति देखकर भविष्य के सुनहरे नक्शे के रूप में गीतकार के हृदय से फूट निकला है। पदमू एक प्रसिद्ध जनसेवक है, जिसे सम्बोधन करके कहा गया है।

इन चारों ओर फैले पहाड़ों ऊंचे-ऊंचे शिखरों पर हमारे गांव हैं। आओ इन गांवों का सुधार करें। पहाड़ के नजारे देखने योग्य हैं। जिस प्रकार इधर-उधर फूल खिल रहे

हैं उसी तरह हमारे गांव भी सुन्दर होने चाहिए। कहीं-कहीं अभी भी पीने के पानी की कमी है। इसलिए कूल (छोटी नहर) निकालें ताकि अनाज अधिक पैदा हो और घराट में घर बैठे ही पिस जाए। हमारे पहाड़ के लोग बड़े भोले, सादे और अनपढ़ हैं, अन्य गांव की तरह इस गांव में भी स्कूल खोलें। अपने गांव के छोटे-छोटे घरों को बड़ा करें। अच्छा करें। गली बरामदों की सफाई करें। आओ अपने इस गांव को देवता का पवित्र स्थान बनाकर देवलोक बनायें।

आजादी के साथ-साथ शिक्षा का प्रसार भी जोर पकड़ता गया। सार्वजनिक शिक्षा के बिना स्वतन्त्रता निरर्थक बन जाती है।

गांधी जी के सपनों के भारत निर्माण के लिए ग्रामों में सुधार की नई लहर का प्रसार होना चाहिए। इन लोकगीतों ने रेडियो, समाचार पत्र और अन्य प्रसार साधनों से जनजागृति में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाई है। इस सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वतन्त्र हो गया और देश की सभी बड़ी रियासतें राष्ट्र का एक अभिन्न अंग बन गयीं। 15 अप्रैल 1948 के दिन पहाड़ की इकत्तीस छोटी-बड़ी रियासतों को मिलाकर हिमाचल प्रदेश का निर्माण हुआ। इस ऐतिहासिक घटना का विशद वर्णन महासू के इस लोकगीत में हुआ है:—

कई ताज टलै, सब राज रलै, बणा देश हिमाचल रे
बणो मिगे, घूरौ बादलै, गेणी भरवी तारे
फूल भरूवे केसरे, रोपे धानै भरूवै सारै
शोको काल टलै, बागौ भरै फलै, तुभी तैतै चलाचल रो
कई ताज टलै ··
गेणी तारै बणो मिगै, भरे रामे
भादरी देखौ तीनौ री, जीनै दुई हाथै कीये कामे
जमीदारौ रे हलै, खेचौ भरै खलै, सब नाज तलातल रे
कई ताज टलै···
बाओ दौ बीजणो, हेरो दौं खाणो, सुखी कुणे नी जाणो
नवै खेचौ खोदियौ, कमावियो अपने हाथे चैंई खाणो
बाओ लेपड़े टलै, बाओ हाडड़ी गलै, सब कुछ मुकाचल रे
कई ताज टलै ··

शब्दार्थ :—कई राजाओं के मुकुट छिन गये और सभी राज्य मिलाकर हिमाचल प्रदेश बना। दुख दूर हुए और खुशहाली भर गई। अब मेहनत से समृद्धि प्राप्त होगी। मेहनत के बिना विकास सम्भव नहीं। परिश्रम से ही देश प्रगति कर सकता है।

इसी हिमाचल प्रदेश का एक और मनोहर चित्र गीत की इन पंक्तियों में

उभरा है ?—

ऊंचे चूड़ रोहतांग किन्नर कैलाश
म्हारै म्हाचलौ रा देश प्यारा
इते ही व्यासे लिखे महाभारतौ रे कथा
रचे ही वेदो रे मन्तर
कुल्ल हाटकोटी मांडी हांडै पाजै पाडूंऐ
काटा बनवास सारा
ऊंचे चूड़···
घौरे घौरे कल्पौ रै वृख कामधेनु गाओ
परी न्होरी हिमबालै
देवतै गौएणै दु उतरेओ पाओले
स्वर्गो रा हि नज़ारा
ऊंचे चूड़···
सतलुज, व्यास, रावी, पब्बर, चिनाब
गिरी गंगा अमरित घोलौ
चलाणा ही जिन्दगी रा पहला धरम औसौ
चलाणा करम म्हारा
ऊंचे चूड़ ··
हिउंदौ खै बरफौ रा धवल दुशाला भीड़ौ
बश्कालै हरा आंचल
झिशि फिरी परबती मुमुट सुनै रै देऔ
आस्मानै लश्कारा
ऊंचे चूड़ ··

शब्दार्थः इस गीत में हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक और सांस्कृतिक परम्परा का सुन्दर चित्रण किया गया है। रोहतांग, किन्नर, कैलाश, महर्षि व्यास, हाटकोटी, व्यास, सतलुज, रावी, पब्बर, चिनाब, गिरी गंगा नदियां इस प्रदेश में बहती हैं जिनसे इस प्रदेश की शोभा बढ़ी है।

हिमाचल प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण इस लोकगीत में उभरा है और कैसे हमारा जीवन इससे जुड़ा है, इसका अनूठा वर्णन है:—

हिमाचल देश हाओं बड़ा बांका लागे हो
ठंडी-ठंडी पवन चालो मीठा पाणी बागो हो
ऊंचे ओ हिमालया री गोदी दा ये बसा दो
फूलो रो सुवासै, फलो रे रसैरसा दो

एक साथे जुड़े दौ असो म्हारै भागौ हो
टेड़ी मेड़ी नदी चालो नागण री चालो हो
हाऊं के सन्देशा देओ तिन्हों री उछाला हो
उठो हिमाचलियो रे समे साथै जागो हो
शोभली ओ वारां रत्थी बांके बांके गबरू
पहाड़ो री ओ चोटी गाशे छोटे छोटे टपरू
हियौं साथै ढकुरू द बड़े बांके लगो हो
चीलो देवदारो रे ओ उच्चै पेड़ झूलदे
जिन्हों रे झुलाए देखी सारे दुख भुलदे
कदी भी ना लाणी इन्हीं जंगालो दी आगो हो
डाली डाली बणां दे ओ पंखरू सै बौलदे
झिशी फिरी हवा मंझे अमरित घोलदे
उड़दे ओ बेशदे सै कैणे बांके लागो हो

शब्दार्थ :—इस लोकगीत में हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन की झांकी उपलब्ध होती है। हिमाचल प्रदेश को ठंडे जल, ऊंचा हिमालय, टेढ़ी-मेढ़ी नदियां इसे सुन्दर बना रहे हैं। यहां के स्त्री पुरुष सुन्दर हैं। पहाड़ों में छोटे-छोटे गांव कैसे सुन्दर लगते हैं। बगीचे और वनों के वृक्ष से इस प्रदेश की शोभा बढ़ी है। पक्षी यहां मनोहर गीत गाते हैं।

वर्तमान महासुई लोकगीतों में केवल भारत के पर्वतीय क्षेत्र हिमाचल प्रदेश की ही प्रशंसा हुई हो, ऐसी बात नहीं। देशभक्तों की प्रशंसा में भी लोककवि की वाणी मुखर हुई है। श्री जवाहर लाल नेहरू का इस लोकगीत द्वारा प्रभावशाली चित्र खींचा गया है।

हाथै की नेहरूआ घोड़े री लगामों
देशो मेरे भाइयो औसो गुलामो
घोड़ा जाणी नेहरू रा बागुरी दा खेलौ
सुभाषौ, कृपलानी चाला शेरो पटैलो
सौरि दिति बौइणियै रौखड़ी बाहनी
हुकमौ शुणे गांधी रो गरेजो रो न मानी
तौंगै जाणी मोहलो रे फीरे ला फेरे
कामो जाणी काखड़े ए केरियो न मेरे
बौइतों तेरी लछमी निकलो ली तौंगै
आंवी मेरे भाइया आजू ली सौंगै
बाशे मेरे कुखड़ुआ डौरे लो कैंई ?
सारो लागो टाबरा आं देशौ री तौई

शब्दार्थ :—नेहरू ने पराधीन देश को स्वतन्त्र करने की बात ठानी। उनके साथ सुभाषचन्द्र बोस, आचार्य कृपलानी और सरदार पटेल सरीखे नेता भी स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। नेहरू जी के साथ उनकी बहन विजय लक्ष्मी भी इस संघर्ष में शामिल हुईं। सारा नेहरू परिवार ही जवाहर लाल के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने लगा।

स्वतन्त्रत भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद का जिक्र भी महासुई लोककवि ने अवश्य किया है। भारतीय गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति बन जाने के बाद राष्ट्रपति जब पहली बार हिमाचल पंचायत सम्मेलन का उद्‌घाटन करने शिमला आए, तो उनका स्वागत इन शब्दों में किया गया।

घैन आज कै देसौ री हुई पंचायती रा मेलौ
राष्ट्रपति रै हुए दर्शणों मनोरंजनों खेलौ
बाबू राजिन्द्रा तेरी कौरी का रीशौ
तुहें आजे शीमले हामें मानी बड़ी खीशो
बापू हुआ म्हारे देशोदा ऋषिमुनि रा औतारौ,
सारी किया जिंदगी दा तौ देशो रा सुधारौ
बापू री चैंही शीखौ दे सभी चालने आंहौ
प्रेमौ आसौ बोलौ शान्ति रा रामौ राजा नांव
आज अमौ सारे भारतौ दो पंचायती राजौ
सौचै जीवै कौरौ मेम्बरी खोटे कामौदे भाजौ।

शब्दार्थ :—आज का दिन अति शुभ है कि आज यहां पंचायत सम्मेलन हो रहा है जिसमें मनोरंजन के वातावरण में राष्ट्रपति के शुभ दर्शन हुए। डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के हमारे मध्य में सम्मिलित होने से हम इतने प्रसन्न हैं कि जिसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। सौभाग्य से हमारे देश में बापू का ऋषि मुनियों की भांति जन्म हुआ और अपना जीवन देश की सेवा में अर्पण किया। इसलिए हमें यह आवश्यक हो जाता है कि हम बापू के आदेश का पालन करते हुए देश में प्रेम और शान्ति का राम राज्य स्थापित करें। आज जबकि सारे भारत में पंचायत राज्य स्थापित हो चुका है तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम बुराइयों से बचते हुए सच्चे भाव से देश की सेवा करें।

इसी प्रकार इस अवसर पर देश में हो रही प्रगति का वर्णन भी लोककवि ने सशक्त शब्दों में किया है।

फूले फौले मुलका योजने रे जोरे
देई टाले महात्मे देशौ दौ गोरै
जगहे खुले जगहै दै कालजौ स्कूलौ
विदेशी आजौ पाउणा देखिय भूलौ

धैन बापू आतेरा दूर ख्यालौ
राजौ किया सामने खि जवाहर लालौ

शब्दार्थ :—हमारी प्रार्थना है कि भारतवर्ष पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप खूब फले फूले क्योंकि महात्मा गांधी जी की कृपा से बड़ी कठिनाइयों से गुलामी की बेड़ियां टूटीं। आजादी के बाद भारतवर्ष में जगह-जगह स्कूल और कालेज खुले जिनको देखकर विदेशी सराहना किए बगैर नहीं रह सकते। हम गांधी जी की दूरअन्देशी के लिए धन्यवाद करते हैं जिन्होंने भारत के राज शासन का भार भारत के सपूत वीर जवाहर लाल के हाथ सौंपा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष हो या स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए भारत की उत्तरी सीमा पर युद्ध हो रहा है। लोककवि कैसे आंख बन्द कर सकता है। 1961-62 का भारत पर चीनी आक्रमण भारत के इतिहास की वह घड़ी है जिसमें उसके आत्म-सम्मान को चुनौती दी गई थी। ऐसे समय में देश का कोई भी व्यक्ति मौन साध कर तमाशा नहीं देख सकता था। भारत के लोगों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और एक होकर शत्रुओं को उनकी धृष्टता की सजा दी। इस पर लोककवि ने देश की जनता को इन पंक्तियों द्वारा आह्वान किया—

खोआ चैई न बौरी पापिये मुलखो रा ठाणों
ऊबै चुंगौ खोखरी खाण्डै घणुऔ रै बाणौ
देशे पोड़ा महात्मे गांधी रै बौरी री डोरौ
घीऔ धैणी छोटहू म्हारे इजती रै धौरौ
बचणै रै धरमौ बादै झणै कै बखाणौ
खोआ चैई न बौरी पापिए मुलखो रा ठाणो
ऊबै चूगो खोखरी खाण्डै धणुओं रै बाणो
हियों-पाति रै शिखरौ देखौ तिरथौ री झांई
गांगै पौड़ी जमनै गाशै बौरी री छोई
धनौ भेजौ दिल्ली के सोने चांदियौं रै चाणौ
खोआ चैई न बौरी पापिये मुलखौ रा ठाणों
ऊबै चूंगौ खोखरी-खाण्डै धणुओं रै बाणो

शब्दार्थ :—भाइयो भावधान हो जाओ, कहीं ऐसा न हो कि पापी तथा बर्बर शत्रु मेरी स्नेहमयी मातृभूमि के प्रतिष्ठित सौन्दर्य को नष्ट कर डालें। इसलिए उठो और जैसे भी बने शत्रुओं का संहार करने को निकल पड़ो। आज मातृभूमि को तुम्हारी परम्परागत वीरता की आवश्यकता है। क्योंकि आज महात्मा गांधी के महान देश पर शत्रुओं का आतंक छा गया है। हमारी बहनों, बेटियों, बालकों तथा सम्मानित घरानों की मान मर्यादा खतरे में पड़ गई है। इसलिए सब लोग मिलकर निकल पड़ो और सभी

को बचाव के तरीके समझाओ।

शिव के कैलाश सरीखे हिमालय के पवित्र शिखर तथा अन्य पावन तीर्थ स्थान तुम्हारी ओर आंख लगाए हुए हैं। क्योंकि गंगा और यमुना के पावन जल पर शत्रुओं की अपवित्र छाया मंडरा रही है इसलिए इन सब की रक्षा के लिए दिल खोलकर धन भेजो और सोने तथा चांदी के आभूषण दिल्ली को भेज दो। शत्रुओं से लोहा लेने को तैयार हो जाओ ताकि ये पापी तथा बर्बर मातृभूमि की मान मर्यादा को नष्ट न कर सकें।

न जाने ऐसे ही कितने वीरता और देशभक्ति से भरे लोकगीत इस पहाड़ी धरती पर उभरे और लोकमानस को झंझोड़ गये। इन लोकगीतों में देश की एकता, अखण्डता और स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए लोककवि ने अपनी सरल शैली में गहरी बात कह दी है।

पाकिस्तान और चीन के साथ युद्ध में न जाने कितने असंख्य वीर भारत मां की आन और शान के लिए युद्धभूमि में शहीद हो गए। उन असंख्य लोकगीतों में एक वीर सूरतराम के बलिदान पर लोककवि के कंठ से मुखर हुआ है।

सेजा गाई मौरदौ जू रौणै दा पौड़ौ
    गाई सेजे छेउड़े जू मैहस्ते जौलो
वीर मौरद सूरतराम देइलै गाये
    समाणा जू रौणैदा नेक नामे पाये
गाई आमै सूरतराम जू रौणै दा पौड़ा
    बोरी साथी रौणदा जू डौंटियो लाडैजा
वीर मोरद सूरतराम जू रौणै दा पौड़ा
    पाकिस्तान बोरी खू जू चोंगा न डौरा
दादे एसरे अचलू हीरे गोरखिये थिये गाड़ै
    शिमले रै पहाड़ै दै म्हारे जु एक नाई पौहड़े
जागीर मिले तोई मामले माफै खानदानै खी त्हारै
    मांगी कटियो गोरखिये आछै कोरे जु घरै
बोरे रामे पाकिस्तान दुजा चायना मिला
    धोखाबाज चायना बौड़ा जू तौई था हिला
शेर मौरदै सूरतदाम छाड़ौ बादै री नांऔ
    देश मुल्क पौरजा तौंई बादै गौड़े ग्रांओ
छोड़ो भारतै शिमलै ऐ हिमाचले ऐ नाओं
    नाओ छाड़ो तौई तेगटा ऐ, करासा नगरी गाओ
जुड़ै थै मेरै बोदे दूई जू निकियौ पौ गाड़ै

भारतै री सिन्गे दै जू वाल भर न छाड़ो
धोखा दिणा मेरे पाकिस्ताने तौई चायना बोड़ा
शेर बबर भारत म्हारा जू नांई इन दा औड़ा
शेखे मारौ था पाकिस्तान जू हराइयो पौछाड़ा
भारतै री सिन्गे दै जू वाल भर न छाड़ै
म्हारा भारत वोरी साथी खब डौटियौ लौड़ा
वीर मेरा पाकिस्तान ऐब्रै हारियौ पौड़ा

शब्दार्थ :—उस मर्द की बहादुरी का गीत गाया जाता है जो जंग में जान त्याग देता है या तो मुल्क की खातिर जंग में बलिदान होता है और औरत वह गाई जाती है जो पतिव्रता हो और अपने पति के साथ ही अग्नि संस्कार के मौके पर जलकर सती हो जाती है।

बहादुर श्री सूरतराम जिसने रणक्षेत्र में कुर्बानी की उसको गाया जाएगा।

हम श्री सूरतराम को गायेंगे जो दुश्मन के साथ मैदाने जंग में लड़ते-लड़ते नहीं थका और जिसने डटकर लड़ाई की।

वीर सूरतराम मैदाने जंग में दुश्मन पाकिस्तान से बिल्कुल नहीं डरा।

गोरखा युद्ध में सूरतराम के पूर्वजों ने गोरखों से ऐसा ही युद्ध किया था।

गोरखों को मार भगाने के लिए पुरस्कार स्वरूप राजा बुशहर ने उन्हें जागीर भी प्रदान की थी।

पाकिस्तान और चीन दोनों भारत के शत्रु हैं। इनसे युद्ध कर सूरतराम जैसे वीर ने देश और अपने गांव का नाम रखा। भारत के वीरों के सामने दोनो शत्रुओं की एक न चली। पाकिस्तान का सारा घमंड भारतीय वीर ने चकनाचूर कर दिया।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि ऐसे अनेक लोकगीत गांव की पृष्ठभूमि पर उभरते हैं, जिनकी चित्र सुलभ सूक्ष्म रेखाएं मन पर एक जादू-सा प्रभाव कर लेती हैं। पर अब जीवन की गति बदल रही है। अब तक भारत के अन्य ग्रामों की तरह हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय गांवों में भी दुनिया से अलग-थलग भाग्यचक्र से विश्वास करता हुआ दबक कर जीवन व्यतीत करता रहा था। अब नई राजनीतिक परिस्थितयों के अनुसार सामाजिक पृष्ठभूमि भी बदल रही है और लोककवियों की रचनात्मक शक्तियां इसे प्रशंसा की दृष्टि से देखने लगी हैं। पर अब जो लोकसाहित्य जन्म लेगा उसका अस्तित्व सामयिक न होगा जैसा कि पुरानी परम्पराओं का तकाजा है।

आज का लोककवि शिक्षा और संचार और वैज्ञानिक साधनों से प्रभावित है। उसके लिए अब गांव और प्रदेश ही नहीं रहा बल्कि इस सारे भारत खंड को ही अपनी जन्म भूमि समझता है। इसलिए इसके उत्थान, एकता, स्वतन्त्रता और शक्तिशाली बनने की कामना करता है। ऐसे अनेक लोकगीत अब धीरे-धीरे जनजीवन में उभरने लगे

हैं। इनमें कूट-कूटकर समाज सुधार और देशभक्ति की भावना भरी है। देखिए इस महासुई लोकगीत का बांकपन :—

मिलयौ करौ भाइया देशौ री सेवा,
म्हारी कौरौ मौदिद नारणौ देवा,
पौहले सभी साथैरी मित्रताई जौड़ौ,
जैजा आजौ बढ़ियौ तेसरे दांदडू चोडौ
बुरी हुऔ भाइयो आपू भांजिवी फूटौ
घर फूटौ अपणौ बौरी मिलौ लूटौ
हिन्दु मां मुसलै सिख या इसाई
बेटै बादे भारतौ रे भारतौ सभी री भाई
आपू माजे भाइयौ एरा कौरौ एका,
जैजा आजौ चौडियौ तेसरा जालादेखा।

शब्दार्थः हमारा कर्त्तव्य है कि हम सब संगठित होकर देश की सेवा करें और हमें पूर्ण विश्वास है कि इसमें भगवान हमारी अवश्य सहायता करेंगे। हमें चाहिए कि हम अपने पड़ोसियों की तरफ मित्रता का हाथ बढ़ायें। यदि कोई इसके विपरीत प्रदर्शन करे तो उसका हमें पूर्ण शक्ति के साथ उत्तर देना है। हमें यह प्रतीत है कि आपसदारी की फूट बहुत हानिकारक होती है क्योंकि इस देश में शत्रु हमारी दुर्बलता का अनुचित लाभ उठाताहै। हम हिन्दू हों या मुस्लिम हों, सिख हों या ईसाई, हम सब भारत के पुत्र हैं और भारत हमारी माता है। इसलिए हम सब को भ्रातृ भाव का पालन करते हुए एकता से काम करना चाहिए और बढ़ते हुए शत्रु का डटकर मुकाबला करना चाहिए।

ऐसे असंख्य लोकगीत युगों-युगों से लोकवाणी में मुखरित होते रहे हैं और होते रहेंगे।

5

हिमाचली लोकगाथाएं : एक सिंहावलोकन

मनुष्य के अवचेतन में आदि काल से अब तक कुछ लोकमानसीय प्रवृत्तियां शेष हैं। यह भावाभिव्यक्ति समय-समय पर किसी न किसी रूप में प्रकट होती रहती है। यह उस मानव समुदाय की बात है जो सभ्य कहलाता है, पर इस सभ्य मानव समुदाय के अतिरिक्त भी एक और बृहत्तर मानव समुदाय है जो आधुनिक सभ्यता की दौड़ से दूर है, जिसमें सांस्कृतिक चेतना जागृत नहीं है, थोथे पांडित्य प्रदर्शन की भावना नहीं है। इसी समाज को लोकसाहित्य के अध्येताओं ने लोक संज्ञा से अभिहित किया है और इसी लोक की अभिव्यक्ति को लोकवार्ता या लोकसाहित्य कहा है।

लोकवार्ता या लोकसाहित्य का यह प्रवाह प्राचीन सरिता के वेग की भांति अदम्य और निरन्तर है। 'लोके वेदे च' श्लोक में वेद के पूर्व लोक की स्थिति स्वीकार कर श्रीमद्‌भगवदगीताकार ने लोकविचारों की प्राचीनता को महत्त्व दिया है। लोकसाहित्य की शृंखला एवं परम्परा सदैव मौखिक रही है।

लोकाभिव्यक्ति की अनेक विधाएं हैं, परन्तु स्थूल रूप में इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, श्रव्य तथा दृश्य। लोकगीत एवं लोकप्रबन्ध, श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत है और दृश्य में लोकनाटक और लोकनृत्य का विधान है।

इनमें लोक प्रबन्ध एक ऐसा रूप है जिसमें जाति और समाज की भावनाएं पूर्ण रूप में प्रकट होती हैं। इनमें लोकादर्श का निर्वाह भी भली-भांति होता है। लोकप्रबन्ध में एक विशाल कथा होती है जो लोकसंगीत के माध्यम से प्रकट होती है। विद्वानों ने लोकप्रबन्ध को निम्नलिखित नामों से अभिहित किया है :—

(क) गीतकथा

(ख) प्रबन्ध गीत

(ग) लोकगाथा

इनमें से लोकगाथा शब्द ही लोकवार्ता के संदर्भ में अधिक लोकप्रिय हुआ है।

लोकगाथा में लोक शब्द गाथा के रचयिता और श्रोता का सूचक है। लोक शब्द के अर्थ में व्यष्टि भाव, समष्टि भाव में विलीन हो जाता है। अतएव लोक के साथ गाथा शब्द एक विशेष अभिप्राय को लेकर प्रयुक्त होता है। गाथा का अर्थ गीत हो सकता है। गीत अर्थ में गाथा का प्रयोग सर्वप्रथम संसार के सबसे प्राचीन लिखित साहित्य ऋग्वेद में मिलता है। वहां इसका अर्थ पद्य अथवा गीत है। गाथा ऋक् से पूर्व भी लोक में विद्यमान थी और उसी से प्रेरणा लेकर अर्थात् लोक से प्रेरणा लेकर वेद ने अपनी वाणी को संजोया है। मैत्रायणि सूत्र में भी गाथा शब्द गीत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि पद्यबद्ध कथा के लिए गाथा शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। गाथा शब्द की प्राचीनता पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि गाथा का जो अर्थ ऋग्वेद से लेकर शतपथ, एतरेय आदि ब्राह्मणों में हुआ है और रामायण महाभारत आदि में रहा है वही आगे चलकर जातक कथाओं में भी सुरक्षित है। पाली भाषा में गाथा जातक कथा का प्रमुख अंग है। वह कोई कथा नहीं, प्रत्युत कथागर्भित पद्य है जो जातक कथा का प्रचार बनता है।

आधुनिक हिन्दी प्रयोग में लोकगाथा, परम्परागत गाथा शब्द से जिस अर्थ में भिन्न है, वह है कथा की प्रबन्धात्मकता, क्योंकि वैदिक काल से लेकर आरण्यक, उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण, प्राकृत रचनाओं, गाथासप्तशती आदि में जहां-जहां गाथा शब्द प्रयुक्त हुआ वहां इसे गेयता और संक्षिप्त कथानक का ही द्योतक समझा गया है। आधुनिक गाथा की भांति प्रबन्धात्मक की प्रवृति नहीं है वहां। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक गाथा शब्द में विशालता गेयता तथा कलात्मकता इन तीन तत्त्वों की त्रिवेणी आवश्यक है। इस गाथा में लोक विशेष लगने से ऐसी गाथा का भान होता है जिसमें लोकमानसीय तत्त्व हों। अतः लोकगाथा शब्द लोकसाहित्य की इस आख्यानमूलक गेय-विधा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। और इसी कारण हम लोकप्रबन्ध के अन्य नामों से सहमत न होकर लोकगाथा नाम ही उचित मानते हैं।

लोकगाथा के लिए कुछ बोलियों में अन्य नाम भी मिलते हैं। जैसे राजस्थानी, गुजराती, मराठी, ब्रज तथा बिहारी में पवाड़ा शब्द प्रचलित हैं। हिमाचल प्रदेश में लोकगाथा के लिए वार या हार शब्द प्रयुक्त किया जाता है। जैसे सति चैंखी री वार मदने री हार, प्रसिद्ध हैं, पर रामायण, महाभारत, भर्तृहरि, देवकन्या आदि के साथ हार या वार प्रयुक्त नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि हार या वार शब्द का प्रयोग विशिष्ट गेयकथानकों के साथ ही होता है। सम्भवतः वीरकथात्मक गेय आख्यानों के साथ ही। किन्तु लोकगाथा के अन्तर्गत सभी प्रकार के गेय, विशाल आख्यानों की आत्मा पूर्ण सुरक्षित है।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अनेक मत प्रकट किए हैं। वास्तव में इन सिद्धान्तों को लोकगाथा की रचना प्रक्रिया के सिद्धान्त कहना

चाहिए। कुछ विद्वान लोकगाथा का रचयिता समुदाय को मानते हैं और कुछ व्यक्ति को। प्रो० ग्रिम तथा स्टेथले ऐसे विद्वान हैं जो एक से अधिक व्यक्तियों को लोकगाथा का रचयिता मानने के पक्ष मे है। प्रो० श्लेगल बिशप पर्सी तथा चाइल्ड ऐसे विद्वान हैं जो एक ही व्यक्ति को लोकगाथा का रचयिता मानते हैं। हिन्दी में डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय समन्वयवाद को मानते हैं।

काव्य या गीत रचना प्रतिभा समुदाय के सभी व्यक्तियों में नहीं होती। अत: किसी बात का अनुभव करते हुए भी सब से प्रकट करने में अक्षम होता है।

लोकगाथा में दीघ कथानक का प्रवाह सभी लोकसाहित्य अध्येताओं ने स्वीकार किया है। यह कथानक सूत्र तभी श्रृंखलित रह सकता है, जब कुछ चुने हुए प्रतिभाशाली व्यक्ति लोकगाथा के रचयिता हों। अनेक व्यक्ति यदि लोकगाथा के रचयिता हुए तो कथानक में एकसूत्रता का निर्वाह नहीं हो सकेगा।

एक या कुछ व्यक्तियों द्वारा रची गई लोकगाथा का संप्रसारण मौखिक रूप से होता है। अत: लोकगाथा के मूल रूप में परिवर्तन होना चाहिए। एक गाथा युगों तक चलती रहती है। अत: प्रत्येक गायक अपने समय के अनुसार नवीन विचार उसमें मिला देता है। फलत: गाथा का रूप बदल जाता है और मूल रचयिता भी तिरोहित हो जाता है। मूल रचयिता अज्ञातकाल में गाथा की रचना कर पीछे छूट गया और लोकगाथा लोकरुचि के अनुसार नूतन-नूतन गायकों के योग से अपना कलेवर पुष्ट करती हुई प्रवाहित होती रहती है।

पाश्चात्य देशों में लोकगाथा पर पर्याप्त कार्य हुआ है। प्रो० किटरिज ने इसे गीत माना है। जिसमें कोई कथा कही जाती है। श्री किटरिज ने इसे गीतात्मक आख्यान कहा है। श्री जीरोल्ड भी '**बैलड**' में कथा और गेयता को महत्त्व देते हैं। श्री सीहोगार्ट इसमें कथा और गीततत्त्व के साथ मौखिक परम्परा होना अनिवार्य बतलाते हैं।

भारतीय विद्वानों में मशहूर इतिहासकार जदुनाथ सरकार ने लोकगाथा में (क) द्रुतगति (ख) शब्द विन्यास की सादगी (ग) विश्वव्यापक, मर्मस्पर्शी, प्राकृतिक और आदिम मनोराग (घ) स्थूल किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण और (ङ) साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनतम उपयोग या सर्वथा अभाव होना आवश्यक माना है। लोकसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा० सत्येन्द्र तथा डा० कृष्णदेव उपाध्यक्ष भी कथात्मकता और गेयता को लोकगाथा में आवश्यक तत्त्व मानते हैं।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में कथा और गेयता पर बल दिया गया है। सभी विद्वानों ने लोकगाथा को लोकप्रबन्ध काव्य माना है। इस दृष्टि से लोकगाथा में निम्नलिखित तत्त्व होने चाहिए।

(1) चरित्र नायक की संपूर्ण जीवन कथा

(2) गेयता

(3) लोक आदर्श एवं परम्परा का निरूपण
(4) लोकमानसीय प्रवृत्तियां
(5) स्वाभाविक प्रवाह

स्पष्टत: हम समझते हैं, कि लोकगाथा, लोकसाहित्य की वह विधा है जिसमें किसी चरित्र नायक की संपूर्ण जीवन-कथा स्वाभाविक रूप से वर्णित हो, जिसमें लोकमानसीय प्रवृत्तियां हों और जनरुचि का विशेष ध्यान रखा गया हो और साथ ही जिसमें गेयता हो। इस परिभाषा के उदाहरण स्वरूप रामचरित्र को लिया जा सकता है। सर्वप्रथम यह कथा लव और कुश द्वारा गाई गई थी। इसमें श्री राम का संपूर्ण जीवन वर्णित है। गाथा एक कथा ही है। संगीत का प्रयोग इसमें रोचकता उत्पन्न कर देता है। अत: संगीत भी इसका अंग बन गया है। लोकरामायण, लोकमहाभारत एवं भर्तृहरि कथा के अंश आज भी लोक प्रचलित हैं और हिमाचल प्रदेश के असंख्य गांवों में गाए जाते हैं।

परम्परागत लोकगाथा में कुछ ऐसे तत्त्व भी विद्यमान रहते हैं जो अलंकृत काव्य से भिन्न है और इनके कारण लोकगाथा में प्रकृत विशेषताओं का समावेश हो गया है। ये तत्त्व इस प्रकार हैं :—

(1) **अनगढ़पन** :—लोकगाथाओं में साहित्यिक कृत्रिमताओं का अभाव होता है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकगाथाओं में सौन्दर्य नहीं है। उसमें अनगढ़ता का नैसर्गिक सौन्दर्य पूर्ण उदात्त रूप में होता है। यही कारण है कि लोकगाथाओं में भावों का स्वच्छन्द प्रवाह होता है। श्री राबर्ट ग्रेव्स ने कहा है कि लोकगाथाएं तकनीकी रूप से समृद्ध नहीं होती। एक उदाहरण देकर हम अपनी बात स्पष्ट करेंगे। हिमाचली लोकगाथा भर्तृहरि की ये पंक्तियां प्रस्तुत हैं :—

झोली औ तौ फावड़ी संगी मेरे साथी औ
सुरु लाऔ किन्दरी दी बातों रे आमिया।

इन पंक्तियों में कोई अलंकार नहीं, कोई कृत्रिमता नहीं, परन्तु मानवहृदय की उस आसफलता की सशक्त अभिव्यक्ति उमड़ी है जिसमें श्रोता समाज सिर हिला-हिला कर रस विभोर हो जाता है। लोकगाथाओं में अभिव्यक्ति ही प्रधान है अन्य उपादान गौण।

(2) **सामूहिक भावभूमि** :—परम्परागत लोकगाथा लोकसंपति होती है। गाथाकार ऐसी ही कथा को लोकगाथा को आधार बनाता है, जो लोकरुचि का समान आधार बन सके। लोकगाथा का गायन समूह के सामने होता है। अतएव गाथाकार उन्हीं भावों को उन्हीं अंशों को गाथा में महत्त्व देता है जो सामूहिक महत्त्व के हों। एकांगी भावभूमि पर आधारित लोकगाथाएं प्रचार नहीं पा सकतीं। त्याग, बलिदान, प्रेम, वचन-निर्वाह आदि वे भावनाएं हैं जिन्हें समाज का प्रत्येक व्यक्ति अच्छा समझता है। अत: इस प्रकार की सेवाजनक रुचि की भावनाओं को सामूहिक भावभूमिक कहा जा सकता है। लोक-

गाथाओं में अधिकतर ऐसी ही भावनाओं को प्रश्रय मिला है। जैसे "**बरलाज**" एवं "**ऐंचली**" की लोकगाथाएं।

(3) **मौखिक परम्परा एवं लिपिबद्ध रूप** :—लोकगाथाओं की मौखिक परम्परा भी उनकी एक विशेषता है। गाथा का प्रथम रचयिता स्वाभाविक रूप से प्रतिभा सम्पन्न तो होता ही था पर लिखना नहीं जानता था। इस तरह वह अपने से बाहर के सामाजिक प्रभाव से अछूता रहता था। अतः वह रचयिता के मस्तिष्क में रची गई और वायु की सहायता से जन के समक्ष आई। उसके बाद भी मौखिक रूप में ही सुरक्षित रही। आज भी लोकप्रिय लोकगाथाओं के लिखित रूप प्रायः नहीं मिलते। जब हम लोक-साहित्य के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हुए हैं, तब हिमाचल की इन लोकगाथाओं का भी लिपिबद्ध करने के प्रयत्न की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं। अभी भी अनेक गाथाएं हैं जो लिपिबद्ध होने को हैं परन्तु विद्वानों के कथन हैं कि लोकगाथाएं तभी तक जीवित रहती हैं जब तक उनकी मौखिक परम्परा बनी रहती है। इसी संदर्भ में डा० कृष्णदेव ने लिखा है :—

"जब किसी गाथा को लिपि के शिकंजों में बांध लिया जाता है तब उसकी वृद्धि रुक जाती है।"

इस सम्बन्ध में हमारा मत यह है कि लोकगाथा के गायक आज भी अनपढ़ हैं और साधारणतः ग्रामों में निवास करते हैं। गायकों से लोकगाथा का लिपिबद्ध करने पर भी यह सब अन्य अनपढ़ गायकों तक नहीं पहुंचता। यदि पहुंचा भी है तो उनके लिए व्यर्थ है। अतएव लिपिबद्ध गाथा का लाभ तो नागरिक जन ही उठाते हैं। इसलिए लिपिबद्ध होने से न तो गाथा ही मरती है न रुपांतरित ही होती है। रामायण या पंडायण हिमाचली लोकमानस की प्रसिद्ध लोकगाथाएं हैं। यह दो तीन रूपों में प्रकाशित हुई है। इनमें से पहाड़ी लोकरामायण का प्रकाशन हिमाचल एकादमी द्वारा और संपादन इन पंक्तियों के लेखक द्वारा हुआ है। इस गाथा को हमने अन्य स्थानों पर भी सुना है। इस सुने गये रूप में और प्रकाशित रूप में पर्याप्त अन्तर है। इससे यह परिणाम निकलता हैं कि लिपिबद्ध होने से इसके प्रचार और लोकप्रियता में कोई अन्तर नहीं आता।

4. **संगीतात्मकता** :—गेय होना, जैसे गाथा का धर्म है। प्रत्येक गाथा लय, राग और ताल में प्रस्तुत की जाती है। साधारण रूप में गाथा का पाठ सुनने से उसका वास्तविक आनंद जान पाना असंभव है। गायक एक वाद्य यन्त्र भी अपने साथ रखता है। इस प्रकार लोकवाद्य, गायक का कंठ-माधुर्य तथा कथा-सौन्दर्य, तीनों मिलाकर आनन्द की त्रिवेणी उत्पन्न कर देते हैं। हिमाचली गाथा "**भर्तृहरि**" के नाथ गायक बीन पर जब आलाप प्रस्तुत करते हैं तो निशीथ के सन्नाटे में यह स्वर जड़ चेतन्य के विवेक को पंगु बना देता है। रागों की समयानुकुलता का भी ये गायक ध्यान रखते हैं। भावानुसार लय में समय-समय के अनुसार गाथा में अन्तर भी उत्पन्न कर देते हैं। मुख्य

रूप से ये लोकगाथाएं मुक्त छन्द में रची गई हैं। इस छन्द की भूमि इतनी लचीली होती है कि गायक चाहे जिस राग में उसे ढाल सकता है।

5. **अज्ञात रचयिता** :—किसी रचना का रचयिता तो अवश्य होता ही है, परन्तु गाथा के लिए मान्यता है, कि गाथा के रचयिता अज्ञात होते हैं। आज इतनी गाथाएं प्रचलित हैं, परन्तु उनका रचयिता कौन है इसका ज्ञान होना कठिन ही नहीं असंभव भी है। क्योंकि गाथा में कहीं उसका नाम नहीं होता। और इतिहास इस सम्बन्ध में मौन होता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय गाथा को जातीय रचना मानते हैं और इसकी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं :—

इसका रचयिता दल के मुखिया का कार्य करता है और जब गाथा की रचना समाप्त हो जाती है तब उसके लेखक होने का वह अहंकार नहीं करता। इस कथन में दो बातें आपत्तिजनक हैं। प्रथम तो यह कि गाथा का लेखक नहीं होता, रचयिता होता है जो मौखिक रचना करता है द्वितीय यह कि गाथा कभी समाप्त नहीं होती।

6. **संदिग्ध ऐतिहासिकता** :—लोकगाथाएं कल्पना, श्रुति, इतिवृत एवं अनुरंजना सम्पुटित रचना है। जो गाथाएं ऐतिहासिक पात्रों को अपनाकर चलती हैं, उनमें भी केवल नायक अथवा अन्य पात्रों के नाम ही ऐतिहासिक होते हैं। घटना व स्थानों की ऐतिहासिकता संदिग्ध ही होती है। इसका कारण है गाथा के रचयिता का अनपढ़ होना। इतिहास का ज्ञान वे श्रुति परम्परा से ही प्राप्त करते हैं। अतः घटनाओं का विकृत होना स्वाभाविक है। ये तथ्य भर्तृहरि, अथवा, भागचंद इत्यादि लोकगाथाएं सुनकर सामने आ जाती हैं।

7. **सुदीर्घ कथानक और अनेक रूपात्मकता** :—लोकगाथाओं का मूल रूप चाहे कितना और कैसा भी हो कालान्तर में उनका कलेवर बहुत बड़ा हो जाता है, इसका एकमात्र कारण गाथा की मौखिक परम्परा है। एक लोकगाथा अनेक रूपों में उपलब्ध होती है। अनेक कंठों में उसका वास होने से वह अनेक परिवर्तनों को अपने में समाहित कर अनेक रूप धारण करती है। कभी-कभी इस प्रक्रिया में मूल कथानक का रूप भी बदल जाता है कभी पात्रों के नाम, भाषा और शैली ही बदल जाते हैं। जैसे रामायण और भर्तृहरि लोकगाथा हिमाचल में ही अनेक रूपों और कथानकों का पुट देकर गाई जाती हैं।

8. **प्रचलित जनभाषा का प्रयोग** : - गाथाकार अपनी रचना को गाकर सुनाता है। अतः वह प्रचलित जनभाषा का प्रयोग करता है। अलंकृत नागर काव्य में जहां काव्य-रचयिता शब्दों के परिष्कृत रूप का प्रयोग करता है और भाषा की शुद्धता का विशेष ध्यान रखता है वहां गाथाकार इस बात की चिन्ता नहीं करता। लोकगाथा की भाषा प्राचीन नहीं पड़ती वरन् चिरनूतन रहती है एवं जीवित भाषा के रूप में वह प्रचलित जनभाषा का प्रतिनिधित्व करती है। यही बात पहाड़ी की लोकगाथाएं रामयण,

पंडायण एवं भर्तृहरि के विषय में कही जा सकती है, वे पुरानी होकर भी नई लगती हैं।

9. **व्यक्तित्व की छाप का प्रभाव** :—आभिजात्य साहित्य में रचयिता का व्यक्तित्व मुखरित रहता है। कभी-कभी तो व्यक्तित्व की यह अभिव्यक्ति इतनी प्रबल होती है कि रचना सुनते ही श्रोता यह समझ लेता है कि रचना अमुक कवि या लेखक की है। परन्तु लोकगाथाओं में रचयिता के व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। इसका मूल कारण परिवर्द्धन परिवर्तन होने से गाथा के रचयिता का व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है।

10. **उपदेशात्मक प्रवृति का अभाव** :—यद्यपि डॉ० उपाध्याय ने लोकगाथा में उपदेशात्मक प्रवृति का अभाव बतलाते हुए कहा है कि जिस प्रकार संस्कृत में नीति-शतक और हिन्दी में नीति के दोहे मिलते हैं, इन गाथाओं में उस प्रकार के नीतिवचन उपलब्ध नहीं होते परन्तु हम समझते हैं कि गाथा से वह उपदेश अवश्य लिया जाता है। प्रत्येक साहित्यकार प्रयत्नपूर्वक उपदेशक बनने से बचना चाहता हैं। परन्तु लोकगाथा सर्वथा उपदेश शून्य होती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

1981 की जनगणना के अनुसार हिमाचल प्रदेश की जनसंख्या 43 लाख है। प्रदेश के 95 प्रतिशत लोग यहां के 18,000 गांवों और कुछ नगरों में बसते हैं। इन सब लोगों की एक ऐसी संस्कृति, धर्म और परम्परायें हैं। प्रत्येक गांव में किसी एक देवी या देवता की पूजा अवश्य होती है। अन्य पहाड़ी लोगों की तरह हिमाचल वासी भी कठिन परिश्रम की थकान और जीवन की दक्षता को हंसी लोकगीत और लोकनृत्य में खो देते हैं। बच्चे, बूढ़े, नर-नारी, सबको इन लोक-परम्पराओं से प्यार है। लगभग सारे त्योहारों, मेलों और लोकगीतों का सम्बन्ध किसी पौराणिक कथा वीरगाथा प्रेम कहानी या बलिदान से जुड़ता है।

हिमाचल प्रदेश के कठिन और सीधे-सादे ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण और सच्चा इतिहास जानने के लिए यहां की लोक-परम्पराओं के बारे में जानकारी आवश्यक है। किसी भी प्रदेश की सांस्कृतिक परम्परा की झलक उस प्रदेश के लोकसाहित्य, लोक-गीत, लोककथा, लोकत्योहारों, कहावतों या गाथाओं में प्रायः मिल जाती है।

जीवन संघर्ष में सबसे आगे बढ़ने वाले वीर, पौराणिक पुरुषों, देवी-देवताओं तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं की करुणा इन लोकगाथाओं के वर्ण्य विषय बन गए हैं। इन लोक-गाथाओं को सभी गाते और अपनी ओर से समयानुसार इनमें कुछ जोड़ते या घटाते रहते हैं। ये लोकगाथायें एक स्थान से दूसरे स्थान तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक श्रुति और स्मृति के सहारे आगे बढ़ती रहीं। ये लोकगाथायें प्रायः कथात्मक होते हुए भी गेय हैं। इनमें से कई नृत्य या वाद्य के साथ गायी जाती हैं। इनमें से कई लोक-गाथाओं का अपना-अपना राग होता है। जैसे बहती नदी में पत्थर के अनगढ़ टुकड़े घिस घिसकर गोल और सुन्दर आकार धारण कर लेते हैं। इसी तरह लोकगाथायें, जहां

कहीं से, गुमनाम लोककवि के द्वारा प्रारम्भ हुई हो वे लोककण्ठ से युग-युग तक प्रवाहित होकर नित्य नवीन रूप धारण करती रहती हैं।

हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी बोलने वाली जनता में विभिन्न क्षेत्रों में कांगड़ी, चम्बयाली, मंडियाली, कहलूरी, किन्नौरी, सिरमौरी एवं महासुई में भिन्न-भिन्न लोकगाथायें प्रचलित हैं। कुछ तो ऐसी हैं जो थोड़े बहुत शब्दों की रचना के भेद के कारण अन्य क्षेत्रों में भी मूल कथा के साथ लोकप्रिय हुई हैं जैसे रामायण, महाभारत, भर्तृहरि, शिव पार्वती। कुछ केवल बोली के क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रही है जैसे महासुई क्षेत्र में महासू, महिमा, रणसी वीर, सती चैंखी, वीर शिरगुल; बिलासपुर में गम्भरी और मोहणा; किन्नौर में जमाल वजीर और कांगड़ा में रामसिंह पठानियां इत्यादि इत्यादि।

हिमाचल प्रदेश की इन परम्परागत लोकगाथाओं को हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

1. पौराणिक
2. धार्मिक
3. वीरता
4. श्रृंगारिक
5. सतीत्व या बलिदान

इस विभाजन से एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि एक प्रकार की लोकगाथा में अन्य प्रकार के गुण भी गौण रूप में प्रायः विद्यमान रहते हैं।

पौराणिक :—हिमाचल की पौराणिक लोकगाथाओं में रामायण, महाभारत और श्री भद्भागवत की कहानी अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। अनेक पौराणिक लोकगाथाओं में से एक अंश शिवजी के विवाह की गाथा लोककवि के शब्दों में यहां उद्धृत कर रहा हूं।

अष्ट कुड़ि देवतें खुमली पाई रे
भोलै म्हारे इषरो खि ब्यौहो रो बताई रे
भाटां कोरे ब्रह्म्या कांसा कोटि जाई रे
भोल म्हारे इष रौ री बरनी पाई रे
भांटा मोई बौरमिये बात बताई रे
कोठि कौरन संध्या गात्री कोठा स्नानों रे
धारि कोरे संध्या गात्री नाले स्नानों रे
भारै दिति बरमियो टोहि कान्है परि रे
भाटा गोआ बरमियां कांसा कोटि जाई रे
सातबेटि राजैरी पानी खै आई रे
भाटे दिति बरमियें टोई बाटै पाई रे
छः बेटी राजे री टोई लौगियौ डेबिरे

सातवीं गिरजा खड़ियै रौही रे
भाटा बोलू बरमियां टोई कैंई पाई रे
टोई न बोलनि ईषरा रो खाई रे
"भाटा कोरे बरमियां बापू खै जाई रे
व्यौहे रि बातौ तेथि बताई रे"·········

सारांश:—देवताओं की एक सभा हुई। सबने यह निश्चय किया कि शिवजी के विवाह की बात करने ब्रह्मा पर्वतराज के पास जाएंगे। बहुत दिनों की यात्रा के बाद ब्रह्मा पर्वतराज की राजधानी पहुंचे। वहां पनघट पर पानी के लिए राजा की सात बेटियां आ रही थीं। इससे पहले कि वे पनघट पर पहुंचतीं, ब्रह्मा ने सोठी मार्ग में डाल दी और स्वयं एक ओर बैठकर तमाशा देखने लगे। राजा की छः बेटियां मार्ग की सोठी की ओर बिना ध्यान दिए उस पर से गुजर गयीं, परन्तु सातवीं गिरजा वहां खड़ी होकर पूछने लगी—पंडित जी यह लाठी मार्ग में क्यों डाल दी है? पंडित जी बोले यह लाठी नहीं महादेव से विवाह करने की स्वीकृति प्राप्त करने का संकेत है। गिरजा ने कहा—हमारे पिताजी से महलों में जाकर बात करो। ब्रह्मा ने पर्वतराज से गिरजा का रिश्ता महादेव से करने का प्रस्ताव किया, परन्तु पर्वतराज पहले तैयार न हुए। परन्तु आखिर गिरजा (पार्वती) की स्वीकृति मिल जाने पर पार्वतराज को बात मान लेनी पड़ी। शिवजी अपनी विचित्र बारात लेकर राजधानी आए। राजा और रानी इस विचित्र बारात को देखते रहे। शिवजी के गण विभिन्न रूप, रंग और वेश-भूषा में आए। उन्हे देखकर पर्वतराज कहने लगे—इस भस्मधारी साधु से मैं बेटी का विवाह नहीं करूंगा। परन्तु दरबारियों और पार्वती के समझाने-बुझाने पर आखिर विवाह सम्पन्न हुआ।

इसी प्रकार की लोकगाथाएं श्रीकृष्ण, श्रीराम और महाभारत के अनेक पात्रों सम्बन्धी हिमाचल में प्रचलित हैं।

धार्मिक लोकगाथाएं:—वैसे तो पौराणिक और धार्मिक लोकगाथाओं में कोई अन्तर नहीं, परन्तु मैं यहां केवल यही बात स्पष्ट करना चाहता हूं, कि धार्मिक लोकगाथाओं में जहां केवल देवी-देवताओं, सिद्धों, वीरों की लोकगाथाओं का ही वर्णन करूंगा। प्रस्तुत लोकगाथा में लोक कवि महासू देवता की महिमा का वर्णन किया है।

ब्रह्मा न जाये रे बिरशुबा, ब्रह्मा न जाये।
बिरशूरे माउड़े राजा, चिड़ेक रानी।
ओवरे दे बाकरे राजा, बाछड़े दो ब्रागो।
ब्रह्मा न जायेरि बिरशुबा, ब्रह्मा न जाए।
बिरशुबा ठणियां, ऐजी का हुई ?
गाबी सूई पन्द्रह राजा, बाछठे दूई,
ब्रह्मा ने जायिरे बिरशुबा ब्रह्मा ने जाये।

काटिले बाकरे गाड़िले लम्बी, बारहबिसी भाउरी भरो।
बौठारी ताबी, ब्रह्मा न जायेर बिरशुबा, ब्रह्मा न जाय।
महासू री माड़ी
चिड़िये रानी, उटे लाई ढांगरे उबो फकुणी वाणी।
चारै महासू डेबे, तोंसौरे तालो
दिल्ली लाए महासुबे कोरचे करे राजारे जाए
मोटे दे, सुंगटू भरी,
ब्रह्मा ने जायेर बिरशुबा ब्रह्मा न जाय।

द्वापर युग में जब कृष्ण दुष्टों का नाश कर अन्तर्ध्यान हो गए तो पांडवों ने बद्री-नारायण की ओर से स्वर्गारोहण को जाते हुए तौंस नदी को पार किया, और वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर युधिष्ठिर ने विश्वकर्मा से हनोल में मन्दिर बनवाने के लिए कहा और स्वयं नौ दिन तक वहां पर विश्राम किया।

रामायण और महाभारत के युद्ध से भागे हुए जो राक्षस उत्तराखण्ड में आकर छुप गए थे उन्होंने कृष्ण के अन्तर्ध्यान होने पर और पांडवों के गंगोतरी व जमनोतरी की ओर जाने के लिए कुछ काल बाद यहां के निवासियों को नाना प्रकार के कष्ट देना आरम्भ किया। उनमें सबसे अधिक बलवान और दुःखदायक किरमार दानू, बशी और सगी जो मेन्धरथ में तौंस नदी के किनारे पर रहा करते थे।

उन दुष्ट आत्माओं ने उन सबको सताया जो उनके सामने आया। लोग प्रायः रक्षा के लिए वहां से भाग निकले। एक बार एक देव वन में तपस्या करने वाले हुण नामक ब्राह्मण के सात पुत्र तौंस नदी में स्नान करने गए। मार्ग में उनको किरमार दानू मिला। जिसने सातों भाइयों को खा लिया। जब यह बहुत देर तक घर नहीं आए तो उनकी माता, किरीतका उनकी खोज में निकली और खोजती-खोजती तौंस नदी पर पहुंची तो वहां उसे किरमार मिला। ब्राह्मणी को देखकर उस पर मोहित हो गया और उसके रोने का कारण पूछा। किरीतका ने कहा कि उसके सात पुत्र नदी पर नहाने गए थे वह अभी तक वापिस नहीं लौटे। किरमार ने कहा कि मैं तुम्हारी सुन्दरता पर मोहित हूं अगर तुम मेरी इच्छा पूरी करो तो मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। मैं वीर पुरुष हूं और रावण-वंश से हूं। मैंने अपने बल से इन पर्वतों का राज्य जीता है।

परन्तु सती-बल और हाटेश्वरी को स्मरण करने से किरमार दृष्टि-हीन हो गया और किरीतका वहां से घर की ओर भागी। घर आकर उसने यह वृतांत अपने पति हुण से सुनाया और कहा कि उनकी रक्षा हाटेश्वरी दुर्गा ने किरमार दानू से की। यह सुनकर हुण और किरीतका दूसरे दिन हाटकोटी दुर्गा के दर्शन लिए चले गए।

वहां पर उन्होंने दुर्गा की फल-फूल इत्यादि से पूजा की। दुर्गा ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए और कहा कि तुम कश्मीर के पर्वतों में जाकर महासू की उपासना करो

वह प्रसन्न होकर तुम्हारा कल्याण करेंगे तुम वहां प्रसन्नता से जाओ तुम्हें मार्ग में कोई कष्ट न होगा। हाटेश्वरी के यह वचन सुनकर वह तत्काल कश्मीर की ओर चले गए। वहां पहुंचकर दोनों पति-पत्नी रात-दिन महासू की पूजा में लीन हो गए। उनकी इस प्रकार तपस्या करने से प्रसन्न होकर चतुर्भुज महासू ने उन्हें दर्शन दिए और कहा कि मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।

जब महासू ने हुण को घर जाने की आज्ञा दी तो उसको एक कमंडल में फूल और दीपक भी दिया और कहा कि मुझ पर विश्वास रखो और अपने घर जाओ। भादों मास की अमावस्या को दीपक जलाकर और रात-दिन जागरण कर मेरा पूजन करना। तीज को तुम्हारे घर के पीछे पीपल के वृक्ष के नीचे से एक शक्ति जल-धारा के साथ प्रकट होगी। उसके शरीर से असंख्य देवता उत्पन्न होंगे। नाग-पंचमी को महासू और क्यालु तथा बनाड़ प्रकट होंगे। इसके अतिरिक्त शक्ति-बल से बहुत सारे देवता प्रकट होंगे वह दुष्टों को मारकर मनुष्य की रक्षा करेंगे। उनका देवालय हनोल में होगा जिसे पांच पांडवों ने बनाया है। यह सुनकर हुण ने परिक्रमा करके प्रणाम किया और घर की ओर प्रस्थान किया। शिव वहां से अन्तर्ध्यान हो गए।

खुश हुए आदमी पहाड़ो रे सारे
कौरे टेक खौम्पणी कुतो रे म्हारे

किरमार और अन्य राक्षसों को मारकर महासू ने तौंस और पब्बर नदियों की घाटी को सब देवताओं में बांट दिया और स्वयं हुण ब्राह्मण को आशीर्वाद देकर लुप्त हो गये।

दूर-दूर से लोग आकर हनोल स्थान पर भादों मास में रात्रि को उत्सव मनाते हैं।

वीरगाथा:—वीरगाथा भी असंख्य हैं। 'गुगे दी बार' तो बिलासपुर, मण्डी और कांगड़ा के क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। इसी तरह कांगड़ा क्षेत्र में रामसिंह पठानियां जैसे वीरगान अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं :—

घर सिआमे दे रामसिंघ जम्मियां
जम्मियां बड़ा अवतारी
जिसदा नाम रख्यिा मार जंग
जिन रक्खी राजपूतां दी लाज।

संक्षिप्त गाथा इस प्रकार है—रामसिंह एक बहादुर राजपूत था, जो नूरपूर की रियासत की पुरानी शान को फिर से स्थापित करने के सपने देखा करता था। 1844 में रामसिंह ने जम्मू में कुछ सेना इकट्ठी की। इस बार उसने जसवन्तसिंह को नूरपूर का राजा तथा स्वयं को उसका मन्त्री घोषित कर दिया।

जब अंग्रेजी सरकार को रामसिंह के विद्रोह की सूचना मिली तो उसने होशि-

यारपुर से एक सेना शाहपुर के किले का घेरा डालने के लिए भेजी। मन्त्री रामसिंह और उसके साथियों ने एक रात में किले को खाली करके नूरपुर से नीचे जंगलों में अपने मोर्चे लगा दिए, लेकिन अन्त में रामसिंह पठानियां की पराजय हुई और वह गुजरात की ओर भाग गया। सिख फौजों ने उसको आश्रय दिया। जनवरी, 1949 में रामसिंह दो सैनिक टुकड़ियों के साथ फिर लौटा और उसने **डल्ले दी धार** नामक शिवालिक की एक पहाड़ी पर मोर्चा लगाया। यह पहाड़ी रावी के किनारे शाहपुर के उत्तर पूर्व की ओर है। अंग्रेज जनरैल व्हीलर के अधीन लड़ने वाले गोरों की बहुत हानि हुई, किन्तु रामसिंह को फिर भागकर कांगड़ा की ओर जाना पड़ा जहां उसे एक ब्राह्मण ने शरण दी पर कुछ दिनों बाद रामसिंह को अंग्रेजों के हाथ बेच दिया। रामसिंह को अब देश निकाला देकर सिंगापुर भेज दिया गया और वहीं अन्त में उसकी मृत्यु हुई। रामसिंह की वीरता के कारनामों के गीत अभी तक पहाड़ी भाट गा-गाकर लोगों को सुनाते हैं कि किस प्रकार रामसिंह ने फिरंगियों के साथ डल्ले की चोटियों पर युद्ध किया, किस प्रकार ढोल बजे, तोपें गूंजी और किस प्रकार रक्त से पहाड़ी रंगी गई।

अनेक लोकगाथायें सामन्तशाही इतिहास पर भी प्रकाश डालती हैं ये वीरगाथाएं प्रायः बड़े उत्सवों पर गाई जाती है।

शृंगारिक लोकगाथाएं:—लोकगाथाओं में जितनी लोकप्रियता शृंगारिक लोकगाथाओं को मिली है, उतनी अन्य किसी को नहीं। इन लोकगाथाओं में परम्परा और आधुनिकता, व्यक्ति और समाज, मान्यताओं और तर्क का संघर्ष पंक्ति में उभरता नजर आता है। इनमें किन्नौर की लोकगाथा जाडनेपति रुपणु, पुहाल, गंगी-सुन्दर, कुंजू-चंचलो और रांझू-फूलमू की हीर-रांझा, सस्सी-पुनु की-सी टीस है।

दोस्ती नी लाणी फूलमू कच्चेयां कने जानी कुवारियां कने
व्याही करी हुंदे बेईमान सेइयो, बल्ला होई बितियां

लोकगाथा की आधार-कथा है, लोकगीत के नायक रांझू एक उच्च घराने का बेटा था और फूलमू एक गरीब गडरिए की पुत्री। बचपन में वे दोनों साथ खेले, बड़े होकर उन दोनों में प्रेम हुआ। जीवन भर साथ रहने के वायदे हुए। परन्तु ऊंचे घराने के घमंड में बाप ने रांझू का ब्याह कहीं और कर दिया। फूलमू यह आघात नहीं सह सकी। उसके जीवन का अन्त हो गया। दूसरे दिन एक ओर रांझू की बारात चली और दूसरी ओर से फूलमू की अर्थी। रांझू भला यह कब सह सकता था। वह पालकी से उतरकर श्मशान की ओर चला। कफन उठाकर फूलमू का चेहरा देखा। उसने चिता को आग लगाई। उससे न रहा गया। सेहरा उतारकर आग में फेंक दिया और स्वयं भी जलती चिता में कूद पड़ा।

प्रेम में कितना बलिदान है, त्याग है पवित्रता है।

हिमाचल की ऐसी ही असंख्य लोकगाथाएं विश्व की किसी भी शिष्ट भाषा एवं

साहित्य के महाकाव्य का आधार बन सकती हैं। हिमाचल की इन प्राचीन लोकगाथाओं में हमें अपने पूर्वजों के रहन-सहन, धारणाओं, भावनाओं, अनुभूतियों, नैतिकता और विषमताओं की झलक प्रचुर मात्रा में मिलती है। इनकी अच्छी भावनायें हमारे मन और प्राणों को प्रेरित करती हैं और विषमतायें जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के महत्त्व पर प्रकाश डालती है।

6

हिमाचल की लोककथाएं

पहाड़ी लोगों के दैनिक रहन-सहन रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा, उपासना एवं परम्परा, इस सबसे पहाड़ी लोककथा का ठाट-बाट बना और बदलता रहता है। हम जानते हैं कि विश्व भर का साहित्य कथा-कहानियों से भरा हुआ है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर बदल जाने वाली लोकभाषा में भी इनकी कमी नहीं है। वास्तव में लोककथा ही समस्त साहित्यिक कथाओं की धात्री है और लोककथा के ही रूप में सदा साहित्य की वस्तुएं अंकुरित होती रही हैं।

भारत को संसार की लोककथाओं का आदि-स्रोत माना जाता है। लोक कथाओं का यह उद्‌गम स्थान प्रधानतः ग्रामों का देश है। इस देश का उत्तरी भाग हिमाचल प्रदेश भी शत-प्रतिशत ग्रामीण प्रदेश है। ग्रामीण जीवन की छाप यहां के निवासियों के जीवन के प्रत्येक अंग पर दृष्टिगोचर होती है साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। उसकी आलोचना होती है। इसीलिए यहां के लोकजीवन का प्रभाव यहां के सम्पूर्ण लोकसाहित्य में विद्यमान है। हिमाचस निवासी जैसे सरल प्रकृति, धर्मभीरु, शांतिप्रिय और सीधे-सादे हैं, वैसे ही सरलता, सुगमता तथा स्पष्टवादिता यहां की लोककथाओं में अजस्र धारा बनकर प्रवाहमान दृष्टिगोचर होती है।

प्रत्येक लोककथा उपदेश का अंश भी रखती है और मनोरंजन का भी। पंचतंत्र, हितोपदेश, भागवत, पुराण, जातक आदि की कथाएं अनेक रूपों में लोकजीवन पर छाई हुई हैं। जिस प्रदेश में ये कहानियां पनपती हैं, वहां के लोकजीवन की छाप उन पर पड़ जाती है। उदाहरण के लिए राजा भर्तृहरि की कथा देश से विभिन्न जनपदों में अनेक रूपों में सुनाई जाती हैं। हिमाचल प्रदेश में भी यह लोकगाथा के रूप में तथा लोककथा के रूप में भी प्रसिद्ध है।

राजा भर्तृहरि उज्जैन के लोकप्रिय राजा थे। उन्हें अपनी रानी पिंगला से बहुत प्रेम था। एक बार राजा शिकार खेलने गए। उन्होंने महलों में रानी तक वह समाचार

पहुंचा दिया कि राजा को जंगल में एक शेर ने मार दिया। यह दु:खद समाचार सुनकर रानी पिंगला सचमुच महल से छलांग लगाकर मर गई। तब राजा भर्तृहरि अपने किए पर बहुत पछताया। जैसे शिव ने सती की लाश कंधे पर उठा ली थी और वह उसका दाह संस्कार न करने देते थे, उसी प्रकार भर्तृहरि पिंगला के लिए दुखी हुए। संयोगवश उसी दिन गुरु गोरखनाथ जी भी उज्जैन पधारे। उन्होंने अपने प्रभावशाली उपदेश द्वारा राजा को लाश जलाने के लिए राजी कर लिया और अपने योगबल से उसे यह बात समझा दी कि इस पार्थिव शरीर में अब कुछ नहीं। पिंगला की आत्मा दूसरा शरीर धारण कर चुकी। उसका जन्म सूधौवर देश के राजा की कन्या के रूप में हो चुका है। वहां पर वह भिरमा के नाम से प्रसिद्ध होगी।

पिंगला की मृत्यु के दुख का घाव पूरा तो क्या होता हरा भी कब तक रहता। आखिर बहुत वर्षों बाद मां, सम्बन्धियों तथा मन्त्रियो के समझाने बुझाने पर राजा ने एक अन्य सुन्दर रानी चौदश से विवाह कर लिया।

निसन्देह, वह उसके सौन्दर्य से बड़े प्रभावित हुए। एक बार प्रसन्न होकर गुरु गोरखनाथ ने उन्हें एक अमरफल दिया। परन्तु चौदश की सुन्दरता का जादू उन पर इतना चढ़ गया था कि वह फल स्वयं न खाकर राजा ने उसे दे दिया। परन्तु राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वही फल कई दिनों बाद भरी सभा में उनकी दरबारी नर्तकी ने राज-भक्ति का परिचय देते हुए उन्हें भेंट किया। काफी जांच करने के बाद राजा पर यह रहस्य खुला कि उनकी सुन्दर रानी उनके एक वजीर के सुन्दर सुपुत्र पर मरती है वजीर के सुपुत्र की पत्नी किसी सैन्याधिकारी से सम्बन्ध स्थापित किये हुए है और इस मोहजाल क चक्कर में वह अमरफल कई हाथों से गुजरता हुआ अन्त में उसके वास्तविक पात्र स्वयं राजा तक पहुंचा।

राजा के हृदय पर गहरी चोट लगी। उन्हें जीवन से ही वैराग्य हो गया, वह अमरफल उन्होंने उसी समय खुद खाया। कुछ दिनों बाद स्वयं संन्यास धारण कर राज्य अपने छोटे भाई विक्रमादित्य को सौंप दिया। अपनी बूढ़ी मां, रानी तथा सम्बन्धियो और प्रजा को रोता छोड़कर वह घर से जंगल की आर निकल गए। इस सन्यासी जीवन में उन्हें अनेक कष्टों से दो चार होना पड़ा। कहीं शेर और चीते, कही डाकू और लुटेरे और कहीं निर्दयी शासकों की जेलें---जैसे अनेक कष्टों को सहते हुए वह अन्त में सुधौवर पहुंचने में सफल हुए। उन्होंने कई जगहों पर भिरमा की सुन्दरता की प्रशंसा सुनी थी। एक बार फिर उनके मन में रानी पिंगला के पुर्नजन्म-स्थान सुधौवर में भिरमा के दर्शन का मोह जागा। सुधौवर पहुंचकर गुरु गोरखनाथ की बात सत्य सिद्ध हुई। भिरमा ने विवाह के लिए यह शर्त लगा रखी थी कि जो कोई उसके प्रश्नों के ठीक उत्तर देगा, उसी से वह विवाह करेगी।

भर्तृहरि से पहले उसे कोई पराजित न कर सका था। हारे हुए राजकुमार

उसकी जेलों की हवा खा रहे थे। राजा भर्तृहरि ने, जो सन्यासी के वेष में थे, जब अपनी इच्छा भिरमा से मिलकर उसके प्रश्नों के उत्तर देने की जाहिर की, तो लोगों को सन्यासी के भाग्य पर हंसी भी आई और रोना भी।

अन्त में भर्तृहरि भिरमा के सामने पहुंचने में सफल हो गए, दोनों ने एक दूसरे के योग-बल की परीक्षा ली। प्रश्नोतर हुए, भर्तृहरि ने विजय प्राप्त की। रानी भिरमा ने भर्तृहरि के साथ विवाह कर लिया। कुछ दिनों फिर से गृहस्थ जीवन व्यतीत कर राजा भर्तृहरि नाथपंथी योगियों के झुंड के संग चले गए। कहते हैं, राजा भर्तृहरि अमरफल खाकर अमर है और अब भी कहीं वनों में, एकांत में किसी भूले भटके को, भोले, सच्चे, सीधे-सादे और भक्त-आत्मा को अकस्मात वह मिल जाते हैं।

हो सकता है हिमाचल की इन लोककथाओं से मिलती-जुलती लोककथायें अन्य प्रदेशों में भी प्रचलित हों। ठीक भी है, लोककथाओं का गारा-मिट्टी तो सब जगह एक-सा ही होता है, परन्तु अपने-अपने क्षेत्र के लोकजीवन की छाप पड़ने से वहां का जो रूप उभरता है, उस पर क्षेत्र की छाप अवश्य होती है।

कुछ लोककथाएं जैसे रामायण, महाभारत, भर्तृहरि, गोपीचन्द, स्थानीय देवी-देवता, राजा-रानी, युद्ध एवं वीरता की कहानियां ऐसी भी हैं जो लोकगाथा के रूप में सस्वर खंजरी और ढोलकी की सुमधुर तान के साथ गाकर सुनाई जाती हैं जिससे उनकी रोचकता और भी बढ़ जाती है। समीप के ग्रामवासी रात को मशालें लेकर ऐसे अवसरों पर एकत्र होते हैं।

हिमाचल प्रदेश के शिमला जनपद में प्रचलित यहां की एक और लोककथा सीता-जन्म के सम्बन्ध में संक्षेप में उद्धृत करता हूं। यह लोककथा के रूप में दीपावली पर प्रायः लोग गाते हैं और नाचते हैं।

रावण लंका का राजा था। उसके घर एक पुत्री का जन्म हुआ। सारी लंका के ज्योतिषियों को बुलवाया गया। उनके मतानुसार लड़की के ऐसे जोग थे कि पिता उससे विवाह करना चाहेगा। यह सुनकर रावण को बड़ा क्षोभ हुआ। उसने लड़की को मार देने की आज्ञा दे दी, परन्तु मां मन्दोदरी ने गुप्त रूप से उसे एक बढ़िया-सी कोठरी में बन्द करवाकर दरिया में बहा दिया। बहते-बहते वह कोठरी एक बूढ़े मछेरे दम्पति के हाथ लगी। उन्होंने जब कोठरी खोली तो उसमें एक सुन्दर लड़की को जीवित देखकर उनको आश्चर्य और दुःख हुआ। उनके अनुसार ऐसी सुन्दर कन्या किसी राजा की सन्तान हो सकती थी। इसलिए राज-प्रकोप के भय से उन्होंने उसे मिथिला के राजा जनक के खेत में एक ओर रख दिया, जहां उसी दिन वैदिक रीति अनुसार राजा जनक स्वयं उस दिन हल चलाने वाले थे। हल चलाते-चलाते उनके हल की नोक उस कोठड़े पर फंसी। देखा, तो एक सुन्दर कोठड़ा सामने पड़ा था, जिसमें एक जीवित लड़की थी।

राजा जनक लड़की को घर ले आए। उसको अपनी सन्तान की तरह रखा।

क्योंकि वह हल चलाते हुए एक 'सी' से पैदा हुई थी, इसलिए उसका नाम सीता पड़ा। बड़ी होकर जब स्वयंवर रचा गया तब उसमें रावण भी उससे विवाह करने के लिए आए। लेकिन उसकी जयमाला भगवान राम के गले में पड़ी। अयोध्या से चौदह वर्ष का बनवास जब हुआ, तो एक दिन वनों में फिर रावण उसे छल कपट से उठाकर ले गए। लंका की कैद में कई बार विवाह का प्रस्ताव रखा, परन्तु सफलता न मिली। रावण को मार, सीता को प्राप्त कर भगवान राम विजयी बनकर अयोध्या आए। उस दिन खूब दीपमाला बनाई गई और राजा राम अयोध्या में राज्य करने लगे। विधि का लिखा कौन टाल सकता है?

विभिन्न जनपदों के लोकगीतों की अपेक्षा, वहां की लोककथाएं काल के बवंडर को सहने में अधिक समर्थ हुई हैं। अतः उनमें विद्वानों के काम के अनेक तथ्य एवं सत्य अक्षुण्ण पड़े हैं। हिमाचल प्रदेश की लोककथाओं के सम्बन्ध में भी यह बात कही जा सकती है।

हिमाचल-निवासियों के सुख-दुःख, प्रीति-शृंगार, वैर भाव, सरलता एवं चातुर्य, बुद्धि एवं कुबुद्धि, इन सबने खाद बनकर हिमाचल लोककथाओं को पुष्ट किया है। हिमाचल के ग्रामवासियों ने भी, स्थानीय नदियों, पहाड़ों, मन्दिर आदि जगहों और देवी-देवताओं के गिर्द अनेक कथाओं का ताना-बना बुना है जो कई पीढ़ियो से मौखिक रूप में स्मृति और श्रुति के सहारे अब तक जीवित हैं।

ईश्वर, मानव और देवताओं की ही नहीं दानव-राक्षसों, भूत-प्रेतों (वनशीरा) चुड़ैलों, डायनों और जानवरों की असंख्य कथायें प्रचलित है। वनप्रेत (वनशीर) के बारे में एक कथा है। किसी जंगल में एक बुढ़िया रहती थी। हर शाम उसके घर एक वनप्रेत आ जाता। जो काम वह करती थी, वही करता था। बुढ़िया बड़ी तंग आ गई। अन्त में उसे एक योजना सूझी। एक शाम जब फिर वनप्रेत मनुष्य के भेष में पहले जैसा आया। उस बुढ़िया ने अपने पैर में फटी बबाई में खलिया (गन्दा बेरोजा) पिघलाकर लगाना शुरू किया। साथ में जलती लकड़ी से बबाई को झुलसने भी लगी। वनप्रेत ने भी ऐसा ही करना शुरू किया। उससे उसके शरीर ने आग पकड़ ली। बच कर जब बाहर भागने लगा और शोर मचाने लगा तो वन के अन्य प्रेत एकत्र होकर पूछने लगे—क्या हुआ? उसने भागते हुए चिल्ला कर कहा—'आपीयै जौला।' तब उन प्रेतों ने सलाह दी कि नदिया के गहरे पानी में छलांग लगाओ तब आग बुझेगी। उसने ऐसा ही किया। लेकिन गहरे पानी मे छलांग लगाकर वह डूबकर मर गया।

हिमाचल की इन असख्य लोककथाओं की वर्णन शैली में बड़ी सादगी रहती है। कथक के जीवन-अनुभव, शब्द-भंडार और स्थान विशेष के लोकजीवन की छाप प्रत्येक लोककथा में अवश्य उपलब्ध होती है। कुछ कथाएं इतनी छोटी होती है कि पांच मिनट से भी कम समय में समाप्त हो जाती है और कुछ इतनी लम्बी होती हैं कि कई

दिनों तक कथक उन्हें सुनाता चला जाता है। इन लम्बी कथाओं में रामायण, महाभारत, शिव पुराण, राजा भर्तृहरि, विक्रमादित्य आदि जैसी कथायें उल्लेखनीय हैं। इन कथाओं में ऐतिहासिकों के काम की कोई सामग्री नहीं मिल सकती क्योंकि इसमें स्थानीय पुट भी अधिक मात्रा में आ गई है। परन्तु इनमें लोकजीवन की झांकी अवश्य मिल जाती है।

हमने अपनी अंग्रेजी पुस्तक "**हिमाचल की लोककथायें**" (भारतीय विद्या भवन, बम्बई-1) में हिमाचल की 37 लोककथाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस संग्रह में सभी लोककथाओं का सम्बन्ध हिमाचल के देवी-देवताओं, मंदिरों, लोक-गाथाओं एवं जनजीवन से जुड़ता है और इनके बारे में स्पष्टत: कहा जा सकता है कि यह लोककथायें केवल हिमाचल प्रदेश की हैं, किसी अन्य भारतीय या विदेशी कथा की छाप इन पर अप्रत्यक्ष रूप से हो, तो कह नहीं सकते। परन्तु हिमाचल प्रदेश की मिट्टी और वातावरण की इन पर प्रचुर छाप है।

●

7

लोककथाओं का नाट्यकरण

युगों-युगों से लोकमानस की अभिव्यक्ति, श्रुति और स्मृति के सहारे लोकवार्ता की अनेक विधाओं से प्राप्त होती रही है। लोककथा, लोकगीतों और लोकप्रबन्ध श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत हैं और दृश्य में लोकनाट्य का विधान है। परन्तु फिर भी वे अलग-अलग नहीं हैं। लोककथायें, लोकनाटक का रूप धारण कर लेती है और लोकनाटक दृश्य के साथ-साथ रेडियो द्वारा श्रव्य बन जाते हैं और टेलीविजन एवं रंगमंच द्वारा वह श्रव्य एवं दृश्य दोनों हैं।

लोककथा शब्द का व्यवहार प्रायः लोक-प्रचलित उन कथानकों के लिए होता है, जो पहले मौखिक और धीरे-धीरे लिखित परम्परा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्राप्त होते रहे हैं। मानव जाति के परम्परागत मौखिक साहित्य में लोककथाओं का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र में सर्वत्र उनका निर्बाध निवास है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा, उपासना। इन सबसे लोककथा का ठाठ-बाट और ताना-बाना बनता और बदलता रहता है। लोककथा मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रान्ति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कथा मानव समाज की प्राचीन रसायन है। दीर्घ समय बाद आज भी उसकी विशेषता और उपयोगिता में अन्तर नहीं पड़ा है। मानव के मन में जो शाश्वत बाल भाव है, उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसकी भावाभिव्यक्ति लोककथा है।

विश्व भर का इतिहास कथा कहानियों से भरा हुआ है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर बदल जाने वाली लोकभाषा में भी इनकी कमी नहीं। वास्तव में लोककथा ही समस्त साहित्यिक कथाओं की धात्री है और लोककथा के ही रूप में सदा साहित्य की वस्तुएं पनपती रही हैं।

भारत को संसार की लोककथाओं का आदि स्रोत माना जाता है। लोककथाओं का यह उद्गम स्थान प्रधानतः ग्रामों का देश है। इस देश का उत्तरी भाग हिमाचल

प्रदेश भी 95 प्रतिशत ग्रामीण जीवन की छाप यहां के निवासियों के जीवन के प्रत्येक अंग पर दृष्टिगोचर होती है। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। उसकी आलोचना होती है। इसलिए यहां के लोकजीवन का प्रभाव यहां के सम्पूर्ण लोकसाहित्य में विद्यमान है। हिमाचल निवासी, जैसे सरल प्रकृति, धर्मभीरू, शान्तिप्रिय और सीधे-सादे हैं, वैसे ही सरलता, सुगमता तथा स्पष्टतावादिता यहां की लोककथाओं में अजस्र धारा बनकर प्रवाहमान दृष्टिगोचर होती है।

हिमाचल का अधिकांश लोकसाहित्य आज भी यहां के सरल ग्रामीण नर-नारियों की जबान पर है, जो उन्होंने बाल्यकाल में अपने बूढ़ों से सुनकर स्मरण किया। यह लोकसाहित्य स्थानीय बोल-चाल की भाषा में ही सैकड़ों वर्षों तक सुरक्षित और परिष्कृत होता रहा। लोकोक्तियां, कथायें और गीत इत्यादि इसके प्रधान अंग हैं। लोककथाओं में सामाजिक विकास सामग्री गौण रूप में उपलब्ध है, जिनमें इतिहास की मृत कड़ियां उद्धार की बाट जोह रही है। यहां के सरस कथात्मक लोकगीतों में उस नैसर्गिक हिम से उज्ज्वल सौन्दर्य की गरिमा झलकती है, जिसका शब्द-चित्रण प्रकृति की गोद में स्वच्छता से पले ग्रामीण नर-नारी ही कर सकते हैं।

स्वतन्त्रता उपरान्त आधुनिक सभ्यता की बाढ़ में यह बहुप्रशासित लोकसाहित्य एवं कला-मकौशल बहुत कुछ तो नष्ट हो चुका हैं। युवक और युवतियों का तो कहना ही क्या, बड़े-बूढ़े तक अब जन-जीवन के प्रतिबिम्ब लोकसाहित्य से अपरिचित होने लगे हैं। लेकिन उन ग्रामों में जो अभी तक आधुनिक सभ्यता के संदेशवाहक नगर या यातायात के साधनों से दूर है। वृद्ध नर-नारियों के कण्ठों में अभी तक वह लोक-परम्पराएं सुरक्षित हैं। विशेषत: जिन परिवारों का पुश्तैनी पेशा ग्रामीणों का लोकनृत्य, लोकगीत और अन्य साधनों द्वारा मनोरंजन करने का रहा है, उनमें लोककथायें, ग्राम्यगीत, नृत्य आदि अभी तक जीवित हैं। यदि आपको ऐसे व्यक्ति से मिलने का सुअवसर प्राप्त हो, तो इस पर्वतीय क्षेत्र के सुहाने अतीत की एक सुन्दर झलक मिलेगी। इन लोगों का मानसिक क्षितिज भले ही सीमित हो, पर इनका सरल एवं सरस जीवन किसी प्रकार भी संकीर्ण नहीं। उसमें गहनता तथा मधुरता है, एक ऐसी परिपूर्णता है, जिसका मिलना आज के तथाकथित प्रगतिशील समाज में दुर्लभ है।

हिमाचल की लोकसाहित्य एवं कला की रस धारा की ओर यदि यथासमय ध्यान न दिया गया तो डर है, लोकजीवन की यह आनन्ददायिनी पयस्विनी धीरे-धीरे सूख ही न जाए। इसलिए अब समय आ गया है कि हिमाचलीय लोकजीवन की प्रतीक इस समृद्धिनिधि का महत्त्व हम पहचानें और न केवल पर्वतीय जीवन की इस रसधारा को प्रवाहित करने में सहायक हों, बल्कि इसके अध्ययन और संरक्षण द्वारा समस्त प्रदेश को प्रेरणा और उल्लास के नए स्रोत तक ले जायें। जिस देश में वैज्ञानिक और आर्थिक योजनायें प्रगति की सूचक समझी जाती हैं वहां सांस्कृतिक और साहित्यिक योजनाओं का भी कुछ कम महत्त्व नहीं समझा जाना चाहिये।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्थल पर लिखा था—"असंख्य गांवों को लेकर जो हमारा देश है, उस देश की मनोभूमि में रस का उद्भव आज तक रुक गया है। जो रस बहुत समय से नीचे के स्तरों में व्याप्त हुआ पड़ा है, वह भी दिनों-दिन गर्म हवा की गर्म सांसों में उड़ जाएगा। अन्त में प्राणनाशा मरुभूमि आगे बढ़-बढ़कर तृष्णा रूपी अजगर की तरह हमारे इस गांव से गुंथे हुए देश को ग्रास करती रहेगी। एक विशेष शिक्षा के कारण देश को देखने वाली आंखे हमने खो दी हैं। झरोखे की लालटेन के उजाले के समान हमारी सम्पूर्ण दृष्टि का लक्ष्य केन्द्रीयभूत हो गया है, शिक्षित समाज की ओर। आज जनता का मानसिक उपवास दूर करने के लिए कोई भी उसकी कुछ भी सहायता नहीं करता। उनके कोई आत्मीय या अपने आदमी नहीं होते हैं। बेचारे अपने आप ही पहले जमाने की तलछट से ही किसी तरह थोड़ी-सी सांत्वना पाने का यत्न करते हैं और कुछ दिन बाद यह भी खत्म हो जाएगा। सारे दिन के दुःख धन्धों के रीते तटनिरानन्द घरों में दीया भी नहीं जलेगा और न गीत सुनाई देंगे। वहां बांस के झाड़ों में झींगुर झनकारेंगे, झाड़ियों में से पहर-पहर पर सियारों की बोली सुनाई देगी और उसी समय शहरों में शिक्षाभिमानियों के झुण्ड, बिजली की रोशनी में सिनेमा देखने के लिए भीड़ लगाए रहेंगे।" कवीन्द्र रवीन्द्र के ये अमूल्य विचार, हिमाचलीय लोकसाहित्य एवं कला के विषय में भी सामयिक एवं अक्षरशः सत्य है।

हमें यह कदाचित नहीं भूलना है कि सरल ग्राम्य लोकजीवन का सच्चा इतिहास जानने के लिए जनश्रुतियों का ज्ञान आवश्यक है। मैक्सिम गोर्की के शब्दों में इनके द्वारा फाउस्ट जैसे महान ग्रंथों की रचना हुई। अतीत काल से लोकसाहित्य इतिहास की प्रगति के साथ-साथ ही अपने ढंग पर आगे बढ़ता है। उदाहरणार्थ—लुई ग्यारहवें, आइवन दी टैरिबल आदि के राज्यों के बारे में लोकसाहित्य का अपना ही अभिमत है, जो इन इतिहासकारों के मत में एकदम विभिन्न है। जिन्हें इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं कि राजा और जागीरदारों के संघर्ष का श्रमिक वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ा? अपने काल में लोक साहित्य ने लेनिन की गिनती भी पौराणिक महापुरुषों में ही कर ली है।

आज के युग में पैसा और राजनीति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर इस बुरी तरह हावी हो रहे हैं कि लोकसाहित्य के प्रोत्साहन और संरक्षण की बात करना असामाजिक और असंगत-सा प्रतीत होता है। साधारण व्यक्ति को जैसे इस विषय पर सोचने का अवसर ही उपलब्ध नहीं, पर सहृदय और मननशील व्यक्ति यह अवश्य अनुभव कर रहे हैं कि मानव स्वभाव की असंगतियां, विकृतियां और उसके कुसंस्कार उसकी जीवन व्यवस्था की अनेक कुरीतियों के मूल से हैं। इस वास्तविकता को कोरा दिवास्वप्न या आदर्शवादी भावुकता कहकर नहीं टाला जा सकता। विश्व बन्धुत्व भावना की बात तो दूर रही, आज हम जिस परिवार, ग्राम, नगर, तहसील, जिला, प्रदेश और राष्ट्र के नागरिक हैं, उसकी लोकपरम्पराओं, धारणाओं और संस्कृति से भी निकट सम्पर्क नहीं।

पर लोक-जीवन से अनभिज्ञता की बात करना ही पर्याप्त नहीं। राज्य सरकार और जनता को पारस्परिक सहयोग से लोकसाहित्य के विश्लेषण, उसकी टूटी श्रृंखलाओं की सम्बद्धता, उसके विकास, व्यापक संग्रह, तुलनात्मक अध्ययन और धूल-धूलरित अमूल्य रत्नों को प्रकाश में लाकर जन-कल्याण के लिए उपयोग में लाना होगा। जन-जन के परम्परागत अनुष्ठानों में जा कला और साहित्य अब तक उपयोग में लाया जाता रहा, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। हमारा यह पर्वतीय प्रदेश निःसन्देह अनेक दिशाओं में प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। रेडियो की ध्वनि से, चित्रपट दर्शन से और समाचार-पत्र के प्रसार से लोकसाहित्य शीघ्र ही विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाएगा। परन्तु हमें इस बात को नहीं भूलना है कि हिमाचल के भावी लोकमानस के भव्य भवन को उस संस्कृति की नींव पर खड़े होना है, जो लोकसाहित्य और कला में सम्वाहित है। किसी देश की अद्यतन भाषा एवं लोक साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन उसके निवासियों के विकास और ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के मर्म को प्रस्तुत करता है। लोकसाहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन से प्राचीन संस्कृति के अनेक तथ्य प्रकाश में आ जाते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कला के लौकिक पक्ष को राष्ट्रोत्थान की दृष्टि से प्रोत्साहन दिया जाए। जिस प्रदेश की कला एवं साहित्य में जन-जीवन का स्पन्दन है, वह वहां की संस्कृति का सच्चा वाहक है। लोकसाहित्य के प्रति जागरूकता इस बात का परिचायक है कि लोकजीवन करवटें बदल रहा है। राहुल सांस्कृत्यायन के शब्दों में लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य के लिए सदा उपजीव्य रहा है और भविष्य में भी रहेगा। किसी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिए उसके लोकसाहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए विद्वान, अनुसंधान-विद्यार्थियों, लोकवार्ताकारों और हिमाचल पर लिखने वालों से इस दिशा में ठोस पग उठाना अपेक्षित है। इस बिखरी हुई लोकथाती को संजोकर मां भारती के बहुमूल्य हार की अनेक अप्राप्त कड़ियां जुड़ सकती हैं, तथा इस प्रदेश की जनता के जीवन संघर्ष के इतिहास का आवश्यक स्वांत प्रकाश में आ सकता है।

हम आज यह भूल जाते हैं कि हमारे पूर्व-पुरुष कैसे सोचते थे, काम करते थे, नए तत्त्वों की उद्‌भावना करते थे, समस्त श्रुति, स्मृति, पुराण, काव्य-कला, धर्म-तत्त्व, राजनीति, समाज तन्त्र के मर्मस्थल में उनकी जीवन शक्ति, उनकी हृदय-शक्ति जागृत रहते हुए किस प्रकार सदैव सृजन और संयमन करती—किस प्रकार समाज प्रतिदिन बढ़ता रहता, परिवर्तित होता, किस प्रकार अपने को चारों ओर फैलाता, नई स्थिति को कैसे अपने साथ सम्मिलित करता—यह हम सम्यक रूप से नहीं जानते। कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में 'आज हमारे परम्परागत विधान रह गए हैं लेकिन वह विधाता नहीं है, शिल्पी नहीं है, लेकिन उसके शिल्प की निपुणता से देश ढका हुआ है। ऐसे लगता है

कि जैसे हम लोग किसी परित्यक्त राजधानी के खण्डहरों में रह रहे हैं, उस राजधानी की ईंटें जहां खिसक गई हैं वहां पर हमने बस कीचड़ और गोबर लीप दिया है, पुरी के निर्माण का रहस्य हमारे लिए बिल्कुल अंजाना है। ऐसी ही अनेक समस्यायें हमारे सामने मुंह बाए खड़ी हैं।'

इस सन्दर्भ में यदि हम लोकगाथाओं को आंके, तो हम पायेंगे कि समस्या सरल नहीं है परन्तु फिर भी अधिक निराश होने की आवश्यकता नहीं है। लोककथाओं में प्रायः ५ तत्त्व प्रमुख माने गए हैं :-- (1) चरित्र नायक या नायिका की सम्पूर्ण जीवनकथा, (2) लोकपरम्परा एवं आदर्श का निरूपण, (3) लोक मानसीय प्रवृत्तियां (4) स्वाभाविक प्रवाह, (5) रोमांचकता। इसके साथ-साथ लोककथा में लोक-साहित्य का एक अभिन्न अंग होने के कारण शिष्ट साहित्य से भिन्न है, और फलतः लोककथाओं में प्रकृत विशेषताओं का समावेश हो गया है, लोककथाओं के प्रमुख तत्त्व हैं :—(1) अनगढ़पन, (2) सामूहिक भावभूमि, (3) मौखिक परम्परा, (4) अज्ञात रचयिता, (5) संदिग्ध ऐतिहासिकता, (6) सुदीर्घ कथानक और अनेक रूपात्मकता (7) प्रचलित जनभाषा का प्रयोग, (8) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव, (9) स्थानीयता, (10) साम्प्रदायिक भावना से विहगता। इन तत्त्वों के आधार पर यदि हम हिमाचल प्रदेश की कुछ प्रमुख एवं लोकप्रिय लोककथाओं का नाट्यकरण करें तो निःसन्देह जनमानस को आधुनिक संदर्भों से जोड़ने की दिशा में हम यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

लोककथाओं में जातीय जीवन की समस्त भावधारा उद्दाम वेग से बहती रही है। प्रायः लोककथा के दो रूप मिलते हैं एक गद्य और दूसरा गेय। गद्य को हम केवल लोककथा या दन्त-कथा ही कहते हैं, और गेय को लोकागाथा या गाथागीत। इस दृष्टि से हम हिमाचल प्रदेश की लोककथाओं को पांच प्रमुख वर्गों में बांट सकते हैं :—

1. वीर गाथाएं : इसमें होन्कूमियां, रानी सूही, शिरगुल, मोहणा, जमाल बजीर, सिंधु री टिकरी, बिची री बली, पवाड़ा, झाको अजबा, रणसी वीर, रामसिंह पठानियां, वीर रुकमणी, टशीकलजम, रूपी राणी, नाउ रे खुंद, रेणुका, बाणासुर, राजा भागसिंह, देवीसरण सीलदार, नन्तरामी री हार, राजा जगता, नेगी दयारी, गढ़ भलोपा, सूरमा मदना, धार देश, राजा महीप्रकाश, राजा संसार चन्द, गोरवा, बोईरीस, राणा गूगागल, महासू, बीरांगना नील देवी, गिनी जा सकती है। इन वीर कथाओं के नायक या नायिकाएं ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी व्यक्ति और घटना प्रधान है पर समय नहीं।
2. प्रेम कथायें : इनमें रूपुणू-पुहाल, कुंजू-चचंलो, सुन्नी-भूखू, फुलमू-राझू, रली-शंकर, गम्भरी, सती चैंखी, हीरा-कमला, नयना लाड़ी, विंदि-जियालाल, गंगी,

अछरी, फिरका लाड़ी, जवाना सिंधिया, भीम हिडिम्बा, मलकु इत्यादि उल्लेखनीय है। हिमाचल प्रदेश में वीरकथाओं की भांति प्रेमकथाएं भी लोक मानस पर गहरा प्रभाव डालती रही है। पुराने गाथागीत अपने पुरानेपन के साथ आज भी लोकमानस को झकझोरते रहते हैं।

3. रोमाञ्च कथायें : इनमें हिना डन्डुष, लाटी, शेरजंग, देव कमरू नाग, देव चतुर्मुख इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। इन कथाओं में अतिमानवीय तत्त्वों का समावेश अत्यधिक पाया जाता है। अलौकिक कृत्यों का इसमें प्रचुर वर्णन मिलता है।

4. पौराणिक कथायें : देव कन्या, रामायण, पंडायण, कुन्तीनन्ती, विष्णु नरैण, शिव विवाह और यकुंतरस के नाम प्रमुख हैं किसी भी देश के जीवन के गहनतम रहस्य तक पहुंचने के लिए उनका पुराण-साहित्य ही सबसे अच्छी कुंजी है कि उसी में समष्टिगत आदर्शों और जातिगत आकांक्षाओं में वे स्वप्न-चित्र मिल सकते हैं जिनका कि विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि, दीक्षा, योग्यता और संस्कारों के आधार पर स्वीकार करते हैं। इन लोककथाओं की उत्पत्ति और विकास पौराणिक कथा-आख्यानों पर आधारित है इन वर्णित अनेक घटनाओं के कारण और परिणाम लोक मानस ने स्वतः रच लिए हैं।

5. निर्वेद कथायें : राजा भर्तृहरि, गोपीचन्द, गोरखनाथ, बाबा बालकनाथ, पूर्ण भक्त, इन लोककथाओं में सांसारिक राग की परिणति निर्वेद में दिखलाई जाती है। संसार की असारता और परमार्थ के प्रति आसक्ति इनका मुख्य उद्देश्य रहा है।

स्पष्टतः लोककथाओं में लोक नाटक के तत्त्व सदैव बीज बनकर विद्यमान रहते हैं। लोकनाटक लोकमानस की अनुकरणमूलक प्रवृत्तियों, काल्पनाओं और क्रियात्मक अनुभूतियों के सहज रूप हैं। इसकी उत्पत्ति एवं विकास के मूल में लोक-विश्वास, लोकप्रचलन, धार्मिक रुढ़ियां, जन परम्पराएं, वीर पूजा की भावना और मनोरंजन आदि रहे हैं। लोकजीवन में इन नाटकों का अपना विशिष्ट स्थान और अनोखा आकर्षण है। लोकनाटकों द्वारा ग्रामीण जनता दृश्य तथा श्रव्य का रसास्वादन करती है। दिखावे से दूर, नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं से अलग, लोक भावनाओं एवं प्रतिक्रिओं का स्वच्छन्द विकास केवल लोकधर्मी नाट्य शैली में ही निहित है। लोकनाटकों की शैली शिल्प से संस्कृत नाटक भी प्रभावित हुए यथा जन-नाटक का हंसोड़ पात्र संस्कृत में विदूषक रूप में आ गया। सामान्यतः ग्रामीण जनसमुदाय में उनके जीवन के अनुरूप हास्य विनोदमय नाटक का सृजन होता चला आया है और उसकी प्रेरणा स्वभावतः जनसमुदाय में सदैव विद्यमान रहती है, क्योंकि उसमें लोकजीवन में गहरी आस्था के

साथ-साथ अपनी जन्मदात्री भूमि की भीनी सुगन्ध का सदैव वास रहता है।

इस सन्दर्भ में सहसा मुझे डा० सत्येन्द्र के वे प्रश्न स्मरण हो आए हैं जो उन्होंने दिनकर भाषण माला व्याख्यान में उठाए थे—"भारत गांवों में है, हम सभी मानते जानते हैं, पर आज के साहित्यकार ने क्या ग्राम जन में प्रवेश कर उसकी कला से अनुप्रेरित होकर उनके लिए छन्द में अपनी रचनाएं दी हैं ? क्या वे ऐसा कर सकते हैं ? लोक-साहित्य और लोकरंगमंच, लोकमुहावरा और लोकभाषा आज भी जीवित है और उसमें वेद भी व्याप्त है। उनकी रचनाओं में क्या हमारा साहित्यकार कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकता और उसे अपनी कला का साधन बनाकर क्या हमारा साहित्य भारत की यथार्थ रीढ़ के अधिकाधिक निकट नहीं पहुंच सकता ? क्या उसे ऐसा नहीं करना चाहिए ? प्रेमचन्द ने गांव का पुराण "गोदान" लिख कर मार्ग प्रदर्शित किया है। उस पुराण को आज का साहित्यकार और अधिक महानता और जीवन व्यापकता से युक्त कर सकता है।

इसलिए यह सामयिक ही होगा यदि इस अंचल के साहित्यकार कुछ प्रमुख लोक-कथाओं का, जिनका वर्णन पहले कर चुके हैं, नाट्यकरण के प्रयोग को और भी अग्रसर हो। इससे लोक मनोरंजन भी होगा और हमारी समृद्ध परम्पराएं लोकनाटक के रूप में गहरी छाप छोड़ जाएंगी। लोककथाकार धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं, इसलिए हिमाचल की लोकथाती को जीवित रखने का यह उपयुक्त माध्यम लगता है। हिमाचल प्रदेश के परम्परागत लोकनाट्य रूपों में करियाला, बौठड़ा, भगत, रास का नाम उल्लेखनीय है। यह सभी हरिकथा वाले भक्ति कालीन लोकनाट्य के पहाड़ी संस्करण हैं।

हिमाचल प्रदेश में करियाला अत्याधिक प्रचलित रहा है। इसका आकार और शैली के कुछ अंग साधुस्वागं, चन्द्रावली नृत्य, कुछ समकालीन समस्याओं के नाट्य रूप हैं। प्रायः यह माना जाता है कि ऐसा नाट्य देवी-देवताओं की करेल मनौतति के रूप में किया जाए तो **करियाला** कहलाता है और यदि विवाह शादी आदि अवसरों पर प्रदर्शित किया जाए तो **बाँठड़ा** कहलाला है। भगत और रास भी हरिकथा और कृष्ण लीला के स्थानीय रूप हैं।

करियाला की आकार और शैली में आधुनिक लोकनाटक बनाने के प्रयास भी किए गए हैं इनमें हिमाचल प्रदेश कला संस्कृति एवं भाषा एकादमी द्वारा पूर्व संयोजित किया गया नाटक **हिनाडुण्डुप-लाटीशरजंग** उल्लेखनीय है। इस लोकनाटक द्वारा हिमाचल की संस्कृति एवं कला को एक सूत्र में पिरोने का प्रयोग किया गया है। आधुनिक भाषा में इसे आप पद्यनाटिका, बैले, वेशभूषा नाटिका भी कह सकते हैं। किन्नौर की प्रसिद्ध लोककथा को पद्यनाटिका का रूप दिया श्री निवास श्री कांत ने। इस लोकनाटक में लोकधुनों, लोकगीतों, लोकनाचों लोक वेशभूषा एवं लोकपरम्पराओं को एकत्र करने का कार्य सामूहिक रूप से हुआ है। इस दिशा में दूसरा सद्प्रयास "**पवाड़ा भाखो अजवा**"

सिरमौर के प्रसिद्ध गाथागीत को सराहनीय नाट्यकरण का था। इस लोकनाटक में मूलकथा की रक्षा तो की गई है परन्तु उसके कथानक, चरित्र-चित्रण, लोकपरम्पराओं एवं आदर्शों के निरूपण लोकमानसीय प्रवृत्तियों के और अधिक समावेश एवं संवाद को अधिक चुस्त बनाने की गुंजाइश अब भी है।

लोककथा या गाथागीत को नाट्य रूप देने की दिशा में तीसरा प्रयास है लाहौल स्थित एवं चम्बा जनपद की मिलीजुली लोककथा के आधार पर रंगमंचित, **'सुनी-भुक'** की प्रसिद्ध लोक कथा। यह तीसरा रंगमंचन प्रयास भी हिमाचल, प्रदेश एकादमी द्वारा ही सम्पन्न हुआ। संगीत नाटिका के रूप में इसका चयन किया गया। इसी लोककथा को रेडियो नाटक का रूप दिया खेम राज गुप्त सागर ने। चम्बा की अनेक कथाओं को पहले भी रेडियो नाटिका का रूप देने का प्रयत्न किया है।

एकादमी की ओर से चौथा प्रयोग इस दिशा में चम्बा चौगान में हुआ। चम्बा की प्रसिद्ध लोककथा **'वीर रानी सुनयना'** के अमर बलिदान की लोककथा को नाट्य रूप देने का श्रेय भी खेमराज गुप्त सागर को जाता है। **'रानी सुही'** के नाम से इस नाटक को भी श्रोताओं द्वारा सराहा गया। चम्बा की लोकप्रिय "फुलमू और रांझू" की अमर प्रेम कथा का साहित्यिक नाट्य रूप देने का प्रयास हरिप्रसाद सुमन ने किया है और **'गलां होई बीतियां'** के नाम से यह नाटक उन्होने प्रकाशित किया। लोककथाओं को नाट्यकरण। सुमन जी का एक और प्रयास है **'मंजरी महोत्सव'**। जिस में सुमन जी की नाट्यकला पहले से निखरे रूप में मिलती है लोककथा पर आधारित प्रकाशित इन नाटकों का सफल रंगमंचन भी हुआ होगा ऐसी मेरी आशा है।

आकाशवाणी शिमला द्वारा 'शिखरो के आर पार' क्रम में हिमाचल प्रदेश की अनेक प्रसिद्ध लोककथाओं का नाट्यकरण हुआ है।

लोककथाओं के नाट्यकरण में लोकनाटकों की जिन शैलियों एवं शिल्प विधान का आधार मानकर आगे चलना होगा, उनका संक्षिप्त संकेत मात्र देने का प्रयास करूंगा। भारत में लोकनाटकों की अनेक शैलियों में लीला, स्वांग, यात्रा, किर्त्तनिया, भांड, विदेशयां, भवाई शैली के नाम उल्लेखनीय है। लोकनृत्य, लोकगीत, कथावस्तु, पात्र तथा रस-विधान सभी नाटकों में लगभग समान रूप से संभव है। अन्य तत्त्वों में स्थानीय अभिरुचि एवं स्थानीय संगीत पद्धति में होने के कारण शैली में भी अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। रंगमंच व्यवस्था, दर्शक व्यवस्था, अभिनय-शैली और लोकानुरंजन की दृष्टि से अनेक परंपराएं स्थापित हो सकती है, जो धीरे-धीरे इनका तन्त्र बन जाएगा। लोककथाओं को लोकनाटक का रूप देने के लिए जिन विशिष्टताओं की आवश्यकता रहती है, वे हैं।

1. आडम्बरहीन रंगमंच : - हिमाचल प्रदेश के जनपदीय क्षेत्र में आधुनिक शैली के नए रंगमंच का निर्माण अगले कई दशकों तक संभव नहीं, इसलिए रंगमंच खुला

होगा। गांव का चौराहा, मन्दिर का चबूतरा या बड़े पेड़ों की छाया में भी नाटक अभिनीत हो सकता है। लोग रंगमंच में चारों ओर से नहीं तो तीन ओर से जनता को देखने की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए।

२. **दर्शक एवं अभिनेता में सामजस्य** :—लोकनाट्यों का अभिनेता दर्शकों के साथ ही घुला मिला रहता है। वह अपनी पोशाक पहन कर बहुधा दर्शकों में ही जा कर बैठ जाता है।

बाह्य प्रसाधनों का अभाव :—मुख सज्जा हेतु बाह्य प्रसाधनों के प्रभाव में देशी प्रसाधनों द्वारा मुख प्रसाधित कर पात्र मंच पर आ जाते हैं।

4. **संगीत, नृत्य एवं काव्य की त्रिवेणी का संगम** :—इन तीन गुणों के बिना कोई भी नाटक लोकमानस को स्पर्श नहीं कर पाएगा।

5. **जनजीवन में प्रचलित कथानक** :—लोक नाटकों के कथानक प्राय: सुपरिचित लोककथाओं का आधार बना कर रचे जा सकते हैं। लोकरंगमंच के दर्शक कथानक से पहले ही परिचित होते हैं, इसलिए उन्हें रसानुभूति अधिक होती है और तभी उन्हें तृप्ति भी मिल पाती है।

6. **स्वाभाविक चरित्र-चित्रण** :—लोकनाटकों के पात्र प्राय: जाने पहचाने और प्रचलित समाजगत प्रवृत्तियों के वाहक होने चाहिए ताकि बिना किसी भूमिका के स्वाभाविक रूप से पात्रों का चरित्र दर्शकों के समुख आ सके। पात्रों के कथोपकथन द्वारा ही उनके चरित्र का उद्घाटन होता है। पात्र अपने हाव-भाव और मुख-मुद्राओं द्वारा अपने चरित्र को सार्थक बनाने की चेष्टा करते हैं।

7. **सरल भाषा** :—भाषा ऐसी कि कोई अनपढ़ व्यक्ति की सरलता से समझ सके जिस जनपद में नाटक प्रदर्शित किया जाए, उस क्षेत्र की बोली का प्रयोग कर नाटक अधिक लोकप्रिय बनने की क्षमता से सम्पन्न होगा।

8. **हास्य-व्यंग्य का समावेश** :—लोकनाटकों में हास्य-व्यंग्य अपने ढंग का होता है। ग्राम्य जनता की रुचि अनुकूल हास्य का समावेश किया जाता है। इसके बिना कोई नाटक सफल नहीं समझा जा सकता।

लोकनाटक के इन मूल तत्त्वों एवं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए लोक कथाओं का यदि नाट्यकरण किया जाए तो यह लोकसाहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी। लोककथा के सफल नाट्यकरण का मापदण्ड यही होगा कि ग्रामीण दर्शक इसे देख और सुन कर मंत्रमुगध हो जाए।

8

पहाड़ी कहावतों में जीवन सूत्र

लोकोक्तियां विश्वसाहित्य में नीति साहित्य का अंग मानी गई है। इसमें निसन्देह लोकजीवन का निचोड़ मिलता है। कम-से-कम शब्दों में जीवन का गहन अनुभव प्रकट करना ही लोकोक्तियों की विशेषता है। पहाड़ी का अधिक साहित्य बहुत समय तक श्रुति और स्मृति के सहारे आज तक जीवित रहा। इसी प्रकार लिखित साहित्य में बहुत पहले मुहावरे एषं कहावतें पहाड़ी भाषा की शोभा बढ़ाते रहे हैं। इन पहाड़ी कहावतों में अभिव्यक्ति की मार्मिकता मिलती है। एक कहावत है— **पिरवि जोगठी ओ बिसवा छेवड़ी घस्तौ पाड़ौ**—अर्थात् सूखी लकड़ी की मशाल और सुन्दर नारी किसी भी समय आपको धोखा दे सकते हैं। कहावतों के साथ एक और कठिनाई सामने आती है कि उनका शाब्दिक अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में करना अत्यन्त कठिन है। एक और कहावत है : —

गौई रे मूलै कोहौ खिडैवि

अर्थात् एक गलत कदम उठ जाने से वह गलती कोसों तक बनी रहती है। कई बार व्यक्ति गलती करके भी मानने को तैयार नहीं होता और ढीठ बनकर अपनी बात में अड़ा रहता है। ऐसी दशा में यह कहावत उद्धृत की जाती है।

नलाजी रै डाल शलांथौ खि

कहावतों का सम्बन्ध मनुष्य के सहज स्वाभाविक सामाजिक जीवन से है। लोक-साहित्य में लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें सामाजिक, दैनिक राजनैतिक, पारिवारिक जीवन सूत्र मिल जाते हैं। इनकी पृष्ठभूमि कल्पना नहीं, जीवन में घटित हुआ यथार्थ है।

इन नीति वचनों को महासुवी में पखनाणे नैणा नयाणा, बोली से बोली भी नाम दिया गया है। इन पखनाणों के निर्माण में परम्परा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। संसार की प्रायः सब जातियों की लोकोक्तियां समान अर्थों वाली होती है। फिर भी कुछ कहावतें ऐसी होती हैं जो किसी विशेष आंचल की परम्पराओं, वहीं की मिट्टी व जल की

उपज होती हैं—दूसरी जगह वह मुखर नहीं हो सकती, जैसे महासुवी की एक कहावत है **घाटौ आजो ठठोईरौ देऔ सूथणों दि पाणो-ठौ** (तीर कमान का खेल) खेलने वाले मैदान में आ गये और सूथण (मोटा ऊनी पाजामा) अब ठीक करने लगा है—ठोठ का खेल हिमाचल में प्राय: महासुवी क्षेत्र मे ही अब प्रचलित है। अन्य प्रदेशो मे मेले के अवसरों पर ऐसा कोई खेल खेला नहीं जाता।

प्राय: आपने हिमाचल के लोगों को कहते सुना होगा—**एरो नहीं कभी न लूदौ जैंदुलकू होंचा खांची लाम्बा** (कहां राजा भोज कहां गंगू तेली) या काति बरशेवणा बूढ़ा जेवणा मुशकिल हुऔ।

(कार्तिक में वर्षा होना बूढ़े को स्वास्थ्य प्रदान के समान होता है)

इन कहावतों द्वारा ऐसे जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति हुई है, जिन्हें दीर्घकाल में इसलिए स्मरण रखा गया या दोहराया जाता रहा कि इससे अधिक सुन्दर और परिमार्जित लोकभाषा में अन्य कोई प्रभावशाली वाक्य इसी भाव को स्पष्ट करन वाला दुर्लभ था।

कहावतें लोकभाषा की अमूल्य निधि है। जीवन के किसी सत्य का महत्त्व प्रत्येक हिमाचली कहावत मे मिलता है। समाज मे एकता की आवश्यकता का इस कहावत द्वारा व्यक्त किया गया है।

फीचू रे जाणे पीपल नहीं हिलदा

(अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता)

इसी बात को एक अन्य लोकोक्ति द्वारा और भी स्पष्ट किया गया है—

एक दिशकी झिकरी जौ-दूजी दिशको पन्द्रह शौ पन्द्रह सौ का यदि एक व्यक्ति विरोध करता है, तो इससे हास्यास्पद और क्या बात हो सकती है पर एकता का इतना महत्त्व होते हुए भी यह कैसे भंग हो जाती है। वह भी कहावत द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

जोंगड़ि नि जोगड़ी बांडोः—हलूरा न शीए हांडा था, इसका अभिप्राय है कि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। हिमाचल के पारिवारिक जीवन पर भी अनेक कहावतें घटित होती हैं। मां के अमर प्यार को इस उक्ति द्वारा चार चांद लग गए हैं।

आगि ओ माम्रो रा नैहस हुऔ

जैसे सर्दी से सताए व्यक्ति के लिए आग की गर्मी का महत्त्व है, वैसे ही दुनियां की निष्ठुरता से सताए व्यक्ति के लिए मां की ममता का महत्त्व है। इसी प्रकार परिवार में छोटे और बड़े भाई का सम्बन्ध पर यह उक्ति उद्धृत की जाती है—

जैठे ओ कनैसै रि नी गाल भिन शूणी

छोटे और बड़े भाई के बारे में कोई समझदार कटु शब्द नहीं सुनाता। फिर

पिता पर भी एक कहावत हैं :—

जैसरा बाप शिकारी हौला, सै शुखी खांदा है

जिसके पिता अच्छी स्थिति में हैं, उसके पुत्र को सुख के सब अवसर प्राप्त हैं।

यदि कोई व्यक्ति समय और स्थान के अनुकूल अपने आपको नहीं ढालता तो उसे समझाने के लिए कहा जाता है :—

सुर्जआ। तेरीखै—जैहरो म्हारी देवठी खाई

इस धूपछांव की जिन्दगी में सब सुखी नहीं रह पाते। प्रायः किसी की खुशी दूसरे को दुख देने में है। इसी बात को यों कहा गया है।—

हाली रा जागरा फाली मौरौ सतनीजा

जिसे हिन्दी में 'मेंढकों की मौत गंवारों की हंसी' उक्ति से अभिव्यक्त किया गया है।

कई बार भूल से अपशब्द का प्रयोग हो जाता है पर बाद में व्यक्ति अपनी त्रुति पर पछताता है। इसी पर कह दिया जाता है :—

हाथौ दो होखर जीभी दो आखर
जब छुटि जाओ, तब सोचिया का टुऔ

बात भी ठीक है, जब हाथ से बर्तन, जबान से बुरा शब्द निकल ही जाता है तब बाद में पछताना व्यर्थ है।

कभी जीवन में दुर्भाग्य से ऐसा अवसर आ जाता है, जब चिराभिलाषित वस्तु प्राप्त हो जाती है, पर जीवन रूठ जाता है। इस विधि की बिडम्बना को कोसते हुए कहा जाता है :

जैति दाख भी पाकी, तैती कौवे रि चोंज भि चुटि

हिमाचल प्रदेश की स्थापना से पहले ये छोटी अनेक रियासतों में विभक्त था। इसलिए उनके राजाओं के व्यवहार के विषय में अनेक लोकोक्तियां प्रचलित हैं। निरंकुश शासक होने से जनता राजदण्ड से प्रायः भयभीत रहती थी। इसलिए राजा के विरुद्ध कोई आवाज उठाने का साहस न कर पाता था। तभी कहा जाता था—**राजै रि भाऔ कि डाक कुण बोलौ** भाव स्पष्ट है कि राजा की गलती की ओर उंगली उठाने का सहास किस में है।

उनके निर्दयी व्यवहार पर एक और फबती है—

सांपौ औ राजा निगरै हुऔ

सांप को कितना दूध पिलाओ, पर समय आने पर डंक जरूर मारता है। इसी तरह राजा की कितनी ही भक्ति करो लेकिन वक्त पड़ने पर वह अपनी निर्ममता दिखाने से नहीं चुकता।

एक और उक्ति द्वारा राजदण्ड का भय अभिव्यक्त किया है—

राज औ नाज घनैओं गाड़ौ

जैसे खाने के बाद व्यक्ति को कुछ कंपकंपी-सी लगती है, उसी प्रकार राजा की शक्ति से प्रजा कांपती है जो सबके साथ गुजरेगी, वह मेरे साथ भी गुजर जाए तो क्या है। इस बात को इस कहावत द्वारा कितना बल मिला है।

जैसी नैंदी राजै रि गऊ डेवौ ली

तैसी मेरा कदार बाछा भी डेंवदा औ

(जिधर राज नंदी की गाय जाएगी, उधर से केदार बछड़ा भी जाएगा)

कभी किसी बात को किसी आड़ में कहना हो, तब भी कहावत से ही काम चल जाता है, जैसे किसी पुरुष की बात चल रही हो, जो किसी सुन्दरी से मोहपाश में फंस गया हो, तो इस कहावत की आड़ ली जाती है :—

चढ़ि रि खाई साल, बिसवै रा मोहा मौरद काबू नहीं आजदा।

(टिड्डी की खाई फसल, सुन्दरी द्वारा मोहक जाल म फसा पुरुष काबू नहीं आता)। जब किसी को चेतावनी दनी हो, तब भी कहावता से काम लिया जाता है—

भूखा ब्रांग मेढकै खाओ (भूखा शर मढक खाता है)। इसी प्रकार किसी को उपदेश देना हो, तब भी लाकोक्ति से उस उपदश को सप्राण बनाया जाता है।

शांगरी डवियौ जाओ शगरालो रो जहा शुणनां ?

(शांगरी जाकर वहा के निवासिया जंस सुनना पड़ता है)

प्रायः हिन्दी उर्दू भाषा-भाषी कहावता को लाकोक्तियां, बोली— ठोली, जर्बुलमेसलै या फब्तियां करते हैं। महासू की बालचाल में इन नीतवचनों को प्रायः 'पखनाणै' कहा जाता है।

हिमाचल प्रदेश का सम्पूर्ण लोकसाहित्य जीवन के विविध अनुभवों से भरा पड़ा है। उस में गीतों का बाहुल्य ता है, यहां की कहावत, जिनका प्रत्येक हिमाचली जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रत्येक मानव का हृदय भावनापूर्ण एवं मस्तिष्क विचारपूर्ण होता है मन में कभी सुखद और कभी दुखद कल्पनायें अगड़ाइयां लेती है, यह कल्पनाए अनुभूतिया और जीवन के सत्य मिलकर कहावतों या पखनाणों का सृजन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी, कोई न कोई ऐसी घटनाएं घटित होती है, जा अनुभूतियो की कसौटी पर कसी जाकर कहावतों या पखनाणों का शिवम् स्वरूप पा जाती है। इन कहावतो का लोक-जीवन से सीधा सम्बन्ध रहता है।

बिना दीवार का ध्यान दिए, किसी व्यक्ति का सिर दीवार से टकरा जाता है, उसे दीवार पर गुस्सा आ जाता है, और दो चार हाथ दीवार पर मारता है या कोई सामने हंस रहा हो, तो सारा गुस्सा उस पर उतार देता है, ऐसी ही परिस्थिति में यह कहावत कही जाती है :—

गाओ रा रोष बाछटू गाशै (गाय का गुस्सा बछड़े पर)

यदि योग्य को सम्मान देने की बात पर जोर देना हो तो प्रायः कह दिया जाता है :—

पागड़ी मुंडो दि लागो, जानु दि नहीं लागदी।

(पगड़ी सिर पर लगती है जानू पर नहीं)

हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन में नारी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है समाज में उसे आदर का स्थान प्राप्त है, जो उसने अपने सौंदर्य कार्यकुशलता तथा अनेक गुणों के के कारण प्राप्त किया है। इसीलिए बुद्धिमान बड़े-बड़े दुष्ट पति को समझाते हुए कहते हैं :—भस्मै दि लातैं, छेवड़ी दी थापै कभी नहीं लाई। (नारी पर हाथ उठाना वैसे ही बुरा है, जैसे कि राख की ढेरी पर लात मारना)

प्रत्येक विवाहित नारी का जीवन तब तक ही सुखद है, जब तक पति जीवित है। इस पर यह कहावत है:—छेवड़ी रै तांओ भाग, जाओ सुहाग (विवाहित नारी के तब तक भाग्य, जब तक सुहाग रहता है)

जिस स्त्री को अपनी सुन्दरता पर घमण्ड है, उसके लिए कह दिया जाता है :— छेवड़ी ओ माखी रीहै दी लागो।

(घमंडी नारी और मक्खी खराब जगह पर ही बठती है) लेकिन सुशील और गुणवान का सभी आदर करते हैं।

छेवड़ी के हुओ शुंठि भी बौनि दौ

(सुशील नारी को तुरन्त स्वीकृति प्राप्त होती है)

अन्हो देवी, डुण्डा पुज्याला, नकटा धूप धुखाणे वाला

सब एक थैली के चट्टे-बट्टे

इक्की नगरा दो अग्घ

एक राज्य में अलग-अलग कानून

गिद्दड़ा जो मिलेया सेहरा तिनि खिट्टा लाई तेहरा

ओछे को अधिकार की प्राप्ति

खिल्ली मढ़ी गिदड़ पुछयाण

अन्धों में काना सरदार

गण्ढी नी धेला चढ़ना रेला

असमर्थ की महत्त्वाकांक्षा

झोटे जो चीण्डू देणा अघणा नेंह भन्नणा

बलवान से लड़ना अपनी ही हानि करना

पत्थरा जो जोक नी लगदी

मूर्ख पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता

बाहरे शीश पट्टी अन्द्रे जूएं घ्रटी

बाहरे टिक्के टारे अन्द्रे जूएं रे खारे
ऊंची दूकान फीका पकवान
शहलयां जांघी ता सेही पर वी मुकाई करी
का वर्षा जब कृषि सुखानी ?
शूरे नी सौग्गण भूतोरे नी औग्गण
समरथ को नहीं दोष गुसाईं
सद्दी नी सदाई हंऊ लाडे री ताई
मान न मान मैं तेरा महमान
हो वो कट्टी दुद्धे वो वट्टी धाहे वी घट्टी
सब ओर से अपना ही स्वार्थ देखना
ना रुच्चो मूंहे ता खा मेरिए नूंहे
बुरी वस्तु दूसरों के हवाले
फुकी हन्दे घरे रा उमयाल एई से ही
भागते चोर की लंगोटी
परु मुई मासी अब्बे आई हासी
असामयिक चिन्ता

जयून्दे खे तील नी मरेदे खे तलुएं ।

जीते को तिल भी नहीं, मरे को तलुएं (तिल और चाश्नी से बने लड्डू) अर्थात् अप्रासंगिक निर्णय लेना ।

आथी री सूंड ओर छोटुआ टूण्ड कदी चुप नी रौन्दे ।

हाथी की सूण्ड और बच्चों के हाथ कभी चुप नहीं रहते । अर्थात् वे सदैव बेचैन रहते हैं ।

लिन्डे बलना खे सौ ब्यादी ।

आधी पूंछ वाले बैल को सौ व्याधियां । अर्थात् दुर्बल व्यक्ति को अनेक उलझनें सताती रहती हैं ।

केई रा तेली केई रा पला ।

कहां का तेली कहां का पला (तेल निकालने का उपकरण) अर्थात् जमीन आसमान का अन्तर होना ।

जणों कदोसला जेसरी पीठ उसलो ।

जानता है कदोसला (चावल के आटे से बनी एक त्यौहारिक रोटी) जिसकी पीठ जलती है । (ज्ञातव्य है कि यह रोटी तबे पर एक ओर से ही पकाई जाती है । दूसरी परत भाप से पकती है ।) अर्थात् सामना करने वाला ही जानता है कि उस पर क्या बीती ।

उठूओ ना आपणे फिटेमुंह गोड्या खे ।

उठा तो खुद से न जाए गालियां दे घुटने को। अर्थात् अपना दोष स्पष्ट मंजूर न कर पाने पर बहानेबाजी वाले उत्तर खोजना।

कान्दा पायें जुंगड़ा घरा खे आका।

कान्धों पर जुआ और घर को आवाजें। अर्थात् इच्छित वस्तु पास होने पर भी अनदेखी में उसे इधर-उधर ढूंढना।

जुदा पुत पड़ोसणी रा ।

जब बेटा सम्पत्ति का बटवारा करके अलग हो जाए तो वह पड़ोसिन के बेटे के समान समझा जाना चाहिए। अर्थात् उसे शिक्षा और डांट नहीं पिलाई जा सकती।

अन्धेरा रा मुण्ड जवां तक कन्धा नी बजकदा तवां तत्ता नी छोंदा

जो छानता है वही जानता है

रस्सी फूंखी गई पर तड़ैग (बाट) नी गई

मरते मरते मर गए न छोड़ा इस आन को,
पढ़ के देखो दोस्तो इस दास्तान को

चोरां रा कपड़ा डांगा रे गज

पानी की कमाई पानी में बहाई

दित्तिया जांघा कुत्ता भी नहीं खांदा

मुंह मांगे मौत भी नहीं मिलनी

आपणे भाण्डे ता कुम्हारी भी सराहां हीं

अपनी दही को कौन खट्टा कहता है

कम न कार मुए मुड़दे दी बगार

ठाला बनिया क्या करे, इस कोठे का धान उस कोठे धरे

जण जण दाई गाभा गई गवाई

जितने मुंह उतनी बातें

जोरां वरां रा पत्थर चढ़ा कवालिया

ये दुनिया मनदी जोरां नूं, लख लानत है कमजोरां जूं, जीभ
दन्दां दे विच रहन्दी ए, पर हिलदा दन्द न सहन्दी ए

कालेआं माहं री एको रास

चोर चोर मोसेरे भाई

बोलां हे रूप घाट नी आऊंदा जनमत आई जाहां ही

खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है

देइये बल्ले चजें चारे नी हूंगी ता गल्लें बातें देखा हारदी

गुण नहीं तो क्या, रूपराज की तो तनुजा हूं

बिल्ली ता काठा री बनाऊं पर म्याऊं कहां कराऊं

मजनूं तो मर भी जाएं पर लैला के मन की क्या खबर

भेडां चली पई हो मक्क जो

उल्टी गंगा चली पहाड़

गंगा गए अस्तु से भी कधी हटी कने आवां हें

दौरे इश्क सदा दिखाता नहीं, गुजरा वक्त फिर हाथ आता नहीं

जे बोलांहे ते माओ मारेआ जाहीं, जे न बोला ता बाब कुत्ता खांहा

सच बोलने में भी गुनाह है, झूठ बोलने में भी बुराई।

खड़ा हूं ऐसी जगह, इधर कुंआ उधर खाई।

ए बैंदा रे चौल हे इन्हां पिच्छ घट-घट निकलदी

इन तिलों में तेल कहां

छंदो गई बलाको आई

आसमान से गिरा खजूर पर अटका

जेथी जे कुकड़ नी हुंदे तेथी भी बिहाग हू हां ही

रब्ब सब का राखा

भला गोह भी कधी आम्बले हेठ जाहां ही

उड़ती चिड़िया पर काटने नहीं देती

जेस पातरा खाणा तिस ही छींडा पाणा

गोदी में बैठे-बैठे दाढ़ी उखाड़ना

न बैहड़ू न बच्छू मजे मंझ हा लच्छू

कोठी वाला रोय छप्पर वाला सोय

नवां री धौली रंग तवे साही

उंची दुकान फीका पकवान

बले अम्मां मिंजो दरवाजे भी डुसके मारा हें

नाच न जाने आंगन टेढ़ा

औ नी मुंहा, देइए नुहां।

बेकार वस्तु दूसरे के लिए।

सद्दी नी बुलाई, लाड़े री बुआ कहाई।

बिना बुलाए पच।

नेड़े बबु बुरा ढव।

बिगड़ा बच्चा प्यार में।

जवायीं जरवाणा, जित्थौ भेजो तित्थौ जाणा।

दामाद दसवां ग्रह।

खेता खौब बकरी, डन भरे खतरीं।
करे कोई भरे कोई।
जिन्हा री मरन मौवां, सै रोंण मंझ गरावां।
कोउ न निबल सहाय।
जिसा पतली खाणा, तिसा छिण्डा पाणा।
दुष्ट न छोड़े दुष्टता, कैसे हूं सुखदेत।
आऊंदियां जी आव, तित्थी न जौ कुत्ते कौव।
आवत आदर नहीं जावत नहीं नमस्कार।
जोदू री जोय, सभी री होय।
जिसकी लाठी उसकी भैंस।
सराहुई दी कुड़ी, चमारां रे तुरी।
गाय गन्दगी खाय।
खरच खाणा पल्ले रा, कम्म करना दल्ले रा।
मुफ़्त की बेकार।
जेहड़ा तेरा बीरण घा, तेहड़ी मेरी पलंग छाह।
जैसा घर वैसा वर।
गट्ठी नी पाव, मनीकरणा रा चाव।
तेते पांव पसारिए जेती लम्बी सौर।
सिंह अपणिया, गीदड़ बगानिया
अपनी गली में कुत्ता भी शेर।
तवे री कच्ची कदी नीं चूल्हे पक्खी।
प्योके री कपत्ती कदी नी घरे बस्सी।
अनुभवहीनता में हानि।
सज्जा खब्बे, खब्बा सज्जे।
जैसा करना वैसा भरना।
जिसरे हत्था डोई, तिसरा सब कोई।
सबै सहायक सबल के।
टुटि रे जुट्टे छेड़ बड़ी, ओच्छे जो परेड़ बड़ी।
थोथा चना बाजे घना।
अपणा घर, थुकी भर।
सुख स्वतन्त्रता मांही।
बगाना घर, चलणे रा डर।
पराधीन सपने सुख नांहि।

गल गांई रे, मार शेरां री।

मुंह में राम राम बगल में छुरी।

नच्चो कूददो तोड़ो तान, ऊहनू जाणे सारी जहान।

जो बहु गाल बजावे, सो पण्डित कहावे।

चूतड़े नी रेजा, सौरियां रे भेजा।

तेते पांव पसारियो जेती लम्बी सौर।

जिस जो किते नी ढोयी, सै वालेरिया, रसोई।

जब बाबाटल, पक्कियां पकाईयां घल।

अपणा लोहू लूको, बगाना लोहू थूको।

अपना अपना पराया पराया।

जेहड़ा राजा, तेहड़ी परजा।

यथा राजा तथा प्रजा।

तुरत दान, महा कल्यान।

दाते ते सूम भला, तुरत मिले जवाब।

जितनी खाखां, उतनी भाखां।

जितने नर उतनी बातें।

सौ चोरा री, इक साधा री।

काठ की हांडी बार-बार नहीं चढ़ती है।

थोड़ा थोड़ा खाइए, चूल्हे पास जाइए।

बूंद बूंद से घड़ा भरता है और खाली होता है।

अपणी मारी गई होश दुजेयो देणा दोष

निज जड़ता पर मांहि।

इक्की खा तूह दुइया खा दूह।

बिन सेवा कहां मेवा।

औलिया वी घात, घड़े वी घात।

समरथ को नहीं दोष गोसाईं।

अन्हे आग्गे न चणा, बोले अग्गे राग

मूर्ख को समझावने ज्ञान गांठि को जाय।

कुत्ते रे चूतड़ां पर मास, तिसरी किसजो आस।

दीरघ होंहिन नैंक हूं, फारि निहारे नैन।

कमाणेंयों तापू रे, खाणेयों मूंह बाकू रे।

जीवन वीता अलस मांहि।

खाई कने मुकरे, न्हाई कने मुतरे

तिन्हा रे घर किथी पूछणे ।

कोई न करे विश्वास घाती की आस ।

खसमा रा फरमाणा,
जिह्या चलाओ तिन्ह्या जाणा ।

जी में जी, हां में हां ।

गाय देख्यां ई बच्छे खा, बच्छा देखां जाड़े फाटें ।

न्यारी मां की ममता ।

घरे नी दाणे, कम्मा गई री पीह्णे ।

ऊंची दुकान और फीका पकवान ।

चाचा हत्थे रंगे भतीजा भुगते पंगे ।

करे कोई, भरे कोई ।

धियां री मौ राणी, पिच्छे ते भरो माणी ।

बेटी-बेटो, बहू-बहूं ।

नाइया बाल केड़े-केड़े,
पुछणा कैसौ मुंहा गेडे ।

हाथ कंगन को आरसी क्या ।

परूं मुई मासी, एब्बे लगि द्रासी ।

गड़े मुर्दे उखाड़ना ।

बड़ी हवेली, रंडा फिरन बेहली ।

नाम बड़े दर्शन छोटे ।

भानजा दोहत, पराया गीत ।

अपना-अपना, पराया-पराया ।

मत्थे री गई क्याड़िया वाट नी दिवदी ध्याड़ियां ।

कंगाली में आटा गीला ।

मुइये मेखे, तू किसरे लेखे ।

किसी भी गिनती में नहीं ।

राह च जांदिये बलाई, तु मांह चिये आई ।

आ बैल मुझे मार ।

सनेह्यां वणज, पर हत्थे खेती,
कदी नी हुंदे बत्तियां रे तेती ।

अपने हाथों किया काम पक्का ।

सै जे हाली रे मना सै बौल्दा रिया कना ।

बुद्धिमान को आंखें चार ।

युवक को विवाह से पहले वृद्ध यह उपदेश प्रायः देते हैं—
मूलै शादियो आनीनो पाणी ।
कूलै शोदियो आननी नाणी ।।
(स्रोत देखकर पानी पीजिए कुल देखकर विवाह कीजिए)

इसी प्रकार जीवन की अनेक अनुभूतियां कहावतों में सुन्दरता से उभरी है—
आ दे हांडणो मुश्किल ।

पाछलै हांडणो सान ।।

(बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे) सत्य आचरण में देर तक नहीं छुपाया जा सकता, इसको यह पखनाणो से प्रकट किया है—

घोयौ रे गौरे, वोघियो रे सौरे नहीं हुंदे ।

(न धोकर कोई गोरा बन सकता है न कहने से ही कोई नजदीकी सम्बन्धी बन सकता है) इस बात को और भी स्पष्ट इस कहावत द्वारा किया गया है—

जौमियौ रि हुऔ गूजौ, लायौ री नहीं हुन्दी । (असली मूंछें मुंह पर स्वयं आ जाती हैं, नकली मूंछें उसका स्थान कैसे ले सकती हैं) ?

जब अपराधी व्यक्ति की अपेक्षा निरपराध व्यक्ति पर इल्जाम लगाया जाता है, तब वह व्यक्ति कह उठता है—ऐरो कैरो ?

खाओ ला ढेलू मोखौ ला झगड़ेलू । (यह दया ? खाये ढेलू भुगते झगड़ेलू)

आपत्ति पर भी एक लोकोक्ति है : दशा आजदे नहीं दिशदि—डेंवदे दिशौ ।

(आपत्ति आते दिखाई नहीं देती जाते दिखती हैं) जाते-जाते मुसीबत मानव जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है : डेंवदा हाली आंगणोबाहौ ।

(जाता हल चलाने वाला आंगण में भी हल चला देता है)

किसी असंभव वस्तु की अभिलाषा करने वाले व्यक्ति के लिए कहा जाता है,—
जींवदै ब्रागौ रो कालजो कोठौ मिलो ?

(जीते शेर का कलेजा कहां मिल सकता है) या इसी भाव पर आधारित दूसरी लोकोक्ति है—न्होलो आली घुघती कोठी मिलौ । (थनों वाला पक्षी कहां मिलता हैं ? जीवन में कठिनाई का सामना प्रत्येक व्यक्ति को करना होता ? इस कहावत में सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है : ब्रागौ दा बाकरी कोठी छूटौ (शेर के मुंह से बकरी कैसे भाग सकती है ?)

मनुष्य अपने कथन की पुष्टि में, या किसी बात को किसी आड़ में कहना हो, उस समय, अथवा जब किसी को चेतावनी देनी हो, तो उसको प्रयोग से लाता है। एक कहावत है—चारौ के बालौ चोर दा डयो,

घरो वाले के बोलो जागदा रौह ।

इस कहावत द्वारा किसी कपटी व्यक्ति के विषय में चेतावनी दी गई है कि यह

व्यक्ति को चोर कहता है चोरी कर और घर वालों को कहता है बच कर रहना, चोरी होगी।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कई ऐसी घटनाएं घटित होती हैं, जो अनुभूति की कसौटी पर कसकर कहावतों का शिवम् स्वरूप पा जाती हैं। जैसे —

अंधा तोवैं मानौ जावैं मूंड लागौ पांडा।

शब्दार्थ है अंधा तब तक किसी की बात नहीं सुनता जब तक उसका सिर दीवार से नहीं टकरा जाता। ऐसी कहावतें मन पर विचित्र प्रभाव डालती है, जो एक साधारण उक्ति नहीं डाल सकती।

सुख दुख एक समान सहन करने वाले मनुष्य के विषय में प्रायः कहा जाता है—

ना शावणो होरा, न पोशौ शूका।

अर्थात् वह ऐसा व्यक्ति है जो न सुख से पागल होता है, न दुख से। अनेक कहावतों में जीवन दर्शन के सुख के संकेत मिलते हैं जैसे—खाओ का लागो जो गाओ लागौ। जिसका मतलब है, कि खाने पीने का नाम जीवन नहीं। जीवन तो वही है, जिसका गुणगान सदैव होता रहे।

अवसर बीत जाने के बाद सुधि में आने वाले व्यक्ति के लिए यह कहावत है :—

शावणो डैबि नदि, पोशौ की सम्भाल। इस उक्ति के समय का महत्त्व स्पष्ट है।

ईसप की कहानियों की तरह, हिमाचल प्रदेश में भी लोककहानियों का विशाल भंडार मौजूद है और उनसे कई कहावतों का जन्म हुआ है।

एक कहानी हैं। मोहिया और जावल दो मित्र थे। मोहिया चालाक था और जावल भोला भाला। एक दिन किसी के घर शहद देखकर दोनों के मन में उसे खाने की सूझी। आंख बचाकर दोनों ने शहद का बर्तन काबू कर लिया। बर्तन अपने हाथ में लेकर मोहिया जावल को कहने लगा—भई। शहद पहले मैं खा लेता हूं। तुम मेरे बाद खाना, जावल ने स्वीकृति दे दी। मोहिया ने सारा शहद पीकर थोड़ा-सा जावल के लिए रखा। जावल कहने लगा अब मैं इसे कैसे खाऊं? मोहिया ने तुरन्त उत्तर दिया। चाटकर। जावल की मूंछे लम्बी थी। और शहद मूंछों से चिपक गया। शीघ्र ही दोनों पकड़े गए। चतुर मोहिया ने तो यह कह दिया—मैंने शहद नहीं खाया। न ही आपके पास इसका कोई प्रमाण है भोला भाला जाबल भी उसी का उत्तर दुहराने लगा। इस पर उसे कहा गया—अरे भई। मूंछों से चिपटा शहद तुम्हारी चोरी की गवाही दे रहा है। इसी घटना का उदाहरण देते हुए प्रायः यह कहावत कही जाती है —

मोह खा न मोहियै, गूजौ लीपी जाबले

अर्थात् शहद तो चतुर मोहिया खा गया और बेवकूफ जाबल व्यर्थ में शहद

चाटता रहा।

चतुर व्यक्ति की कपटता की ओर संकेत करते हुए कहावत कही जाती है

देखै, नहीं ठोगी रै चाओ, दुजै री बांठणि नांगी नचाओ ।।

तात्पर्य यह कि चतुर व्यक्ति दूसरों की कमजोरियां विशेष ढंग से दूसरों पर व्यक्त करता है।

शायद हिमाचल प्रदेश ही भारत का ऐसा भूमि भाग है, जहां असंख्य देवी-देवताओं का पूजन यहां के निवासी विशेष श्रद्धा और भक्ति से करते हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी मनोकामना अन्य लोगों के सामने, देवता की प्रतिमा से वरदान मांगते हुए व्यक्त न करना चाहे तो वह कह देता है :—

देवता हौला तो मौनौ रो बैड़े, शब्दार्थ है कि शक्तिशाली देवता होगे तो मेरे मन की बात भी समझ जाओगे।

ऐसी असंख्य कहावतों में से कुछ यहां उद्धृत कर रहा हूं।

—औस्त औ मौत कड़वी लागो दवाई और अकल की बात कड़वी लगती है।

—मांगिओ आणी भीख, तेई खांदा पौड़ा रीख—मांग के भीख लाये उसे खाने रीछ पड़ गया।

—आगि ओ पाणि दो ताऊले नी हुईन्दै—आग और पानी से अधिक जल्दी से काम लिया जाता।

—एक घोर डागओ जों भी छाड़ो एक घर तो डायन और यमदूत भी छोड़ देते हैं।

—एकि बेरे बीकौ काठौ रि मि —एक बार तो नकली माल बिक जाता है, पर हमेशा नहीं।

—कभी बाकरै बेली, कभी शुकिए शैली—जीवन में कभी बकरे खा कर मौज करते हैं तो कभी दो टुकड़े रोटी भी नहीं मिलती।

—जे रेकै री आखिए दी शदौ, तो आपणी भाणियौ कौंरदे—यदि दूसरे की आंखों से नजर आता तो अपनी आंखें निकाल देते।

—जेजी गांव भाशोलि न सेजी गाव घास ही नहीं देई—

ना गाय बोलती ही नहीं, क्या उसको घास ही नहीं दिया जाता ?

—रूखौ आजै ढोलणे, आगिदि मिला शमाहता – वृक्ष ने तो गिरना ही था, हवा को इल्जाम मिल गया।

—तूरि रि दै औ भेड़ै रि वै कभी नहीं मुकदि—लोकवादक की दे दे और भेड़ का बोलना बै बै कभी खत्म नहीं होता।

—तेहरो ही आंगणो, तेहरो ही घोर, जेहरौ कौरनौ तहारौ ही कौर—तेरा ही आँगन तेरा ही घर, जैसा करना वैसा कर।

—जुऔ रि तौई झुड़का नहीं दौई—यदि कपड़े में जूं हो तो उसे जला नहीं देते।

—नाको दो शिणकौ, खाकौ दौ लीपौ—आसमान से गिरा खजूर में अटका।

सच्चाई को आवरण में देर तक नहीं छिपाया जा सकता। इसको इस कहावत में प्रकट किया है।

—धौयौ रै गौर, बोलियो रै सोरै नहीं हुन्दै—(न धोकर कोई गोरा बन सकता है और न कहने से कोई नजदीकी सम्बन्धी बन सकता है)।

—वास्तविक नजदीकी कौन है ? इसका उत्तर इस कहावत में मिलता हैं :—
गूजौ जोमियौ री हुऔ, लाईयो री नी हुन्दी
(असली मूंछें मुंह पर स्वयं आ जाती है, नकली उनका स्थान कैसे ले सकती है)

—गलत इल्जाम लगने पर कोई व्यक्ति कह उठता है—खाओला ढेलू, मोखां रा झगड़ेलू—(ढेलू की टोपी झगड़ेलू के सिर]।

आपत्ति पर भी एक लोकोक्ति है :— दशा आजदै नहीं दिशदी, डेंवदी दिशौ

आपत्ति आते नहीं, जाते महसूस होती है (आपत्ति में पड़े मनुष्य की जब कोई सहायता करता या बुरी बात कहता है, तब कहा जाता है :—

खौरी रो आखर, कालौ रा टुकड़ा, याद रौह

ॠतुओं पर आधारित अनेक कहावतें हैं। अधिक वर्षा से अकाल नहीं पड़ता।

—बौरशिओ काल नहीं पौड़दे—वर्षा होती रहे तो अकाल नहीं पड़ते इसी तरह एक और कहावत है— माघ और ब्राघ राति दीऔ

माघ महीने हिमपात और लकड़बग्घा रात को ही आक्रमण करते है। जो काम जिसका है वही करे इस पर कहा जाता है

—भेड़ों गिणे खौलै नही गाहीन्दै
(भेड़ें खलिहान में अनाज को वाली से अलग नहीं कर सकतीं)

किसी का किया हुआ अच्छा या बुरा काम सबको एक न एक दिन नजर आता है तभी कहा जाता है…

नाबी रै बाल नजरि दे आजो (नाई के बाल नजर आते हैं)।

जो व्यक्ति कोई काम नहीं करता उसे हर समय बुरी बातें सूझती हैं, उसके लिए यह फबती कसी जाती है—बेला नाई कुवरो कुंडी
(फालतू नाई कुत्ते की हजामत करता है)

अधीर व्यक्ति को धैर्य बंधाने के लिए कहा जाता है—

जैसखै लाऔ ओ सीवी तेसखै नहीं बोली नंगा, जेसखै लाऔ औ हेरि तेसखे बोली नहीं भूखा—(जिसके लिए रोटी और कपड़ा बन रहा है, उसके लिए भूखा और नंगा नहीं कहा जा सकता)

कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा, इस भाव को प्रकट करने

के लिए कहावत है—ढैल दोहची स्पौइल बासा

मानव की एक छोटी सी भूल, उसे बहुत लम्बे समय तक गलत रास्ते पर डाल देती है। इसके लिए यह कहाबत कही जाती है—गौई रे मूले कोहौ कि डैबी—(एक कदम का भूला व्यक्ति कोसों तक गलत राह पर चला जाता है) गरीबी पर एक और कहावत है—न खाणे खाण, न मांजे बाण

निर्धना सबसे बुरी बला है। इसी पर कहावत है—

गांठी न धेला, ते चढ़ना रेला— अपनी पहुंच से बाहर कोई काम करना।

गुण देई करी करा, ता जहर न देणा,

अगर मीठी मीठी बातों से काम बन जाये तो कड़वे शब्दों का प्रयोग न करना चाहिए। बातें बनाने वालों पर एक कहावत है—

जितनी खाखां, उतनी भाखां (जितने मुंह उतनी बातें)

सब शक्ति के आगे झुकते हैं और सब सबल के सहायक होते हैं—

जिसरे हत्था डोई, तिसरा सब कोई

थोथा चना बाजे घना के लिए यह कहावत है—टुटि रे जहे छेड़ बड़ी,

आछि री करड़ बेड़ि

बूंद-बूंद करके घड़ा भर जाता है और खाली भी हो जाता है। इसके लिए लोकोक्ति है : थोड़ा-थोड़ा खाइए, चूल्हे आग पाइये।

शायद हिमाचल प्रदेश ही एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ असंख्य देवी-देवताओं का पूजन यहां के निवासी विशेष श्रद्धा और भक्ति से करते है। कोई मेला बिना देवता के पूरा नहीं समझा जाता। इसलिए कहा जाता है—

बिनि देवै जातरौ नहीं हुन्दी

हिलाचल लोकसाहित्य की अमूल्य निधि इन कहावतों द्वारा अन्य असंख्य कहावतों के महत्त्व का हल्का-सा आभास मिल जाता है। जहाँ एक बात से अन्य बहुत सारी बातों का भी ज्ञान हो जाए, उसके लिए भी एक कहावत प्रचलित है—

चावलौ री एक गुल्टी देखि

सारा हांडा नहीं खारैली

कहने का तात्पर्य है कि चावल पकाते समय उसके कुछ दानों से उसके पकने का संकेत मिल जाता है। सारे पतीले में कड़छी घुमाने की कोई आवश्यकता नहीं।

9

लोकनृत्य का संरक्षण एवं विकास

लोकांचलों में एकता, समानता, जनमनोरंजन प्रदान करने में लोकनृत्यों की भूमिका सदैव ही महत्त्वपूर्ण रही है, क्योंकि लोकनृत्यों द्वारा जन अभिरुचि, मानव की सौन्दर्य उपासना, जनमानस की उमंगें, प्रकृति का रंग-वैभव, ग्रामजीवन के संघर्ष, श्रम और मन की वन्धनमुक्त उड़ान प्रतिबिम्बत होती है। सरलता, संवेदना, सहकारिता स्फूर्ति, रंग-वैभव तथा शक्ति के संगम लोकनृत्यों में सम्पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होती है और सामाजिक एवं सांस्कृतिक संचेतना के तात्त्विक गुणों की जैविक गरिमा प्रकट होती है। वास्तव में लोकनृत्य लोकभावना की प्राणात्मा है और इसमें लोकसंस्कृति चिरायु होकर कुसुमित होती है। चूंकि लोकनृत्यों में लोककला की जीवंत सांसे होतीं हैं, इसलिए ये लोककला के नैसर्गिक प्रतिफलन से सीधी पहचान कराते हैं।

लोकनृत्य के ऋतु-पर्व, महोत्सव-त्यौहारों आदि अवसरों पर आयोजित की परम्परा प्रारम्भ से ही रही है। अत: लोकनृत्यों को जीवित रखने और उनको विकास की गति देने का श्रेय इन्हीं पर्वों-महोत्सवों को है। ऐसे अवसरों पर जो लोकनृत्य आयोजित किए जाते हैं, उनकी प्रकृति सांस्कृतिक विकास, कृषि उन्नयन और धर्म संचेतना आदि से संलिष्ट होती है।

भारत में नृत्यों का क्रमबद्ध इतिहास पुन: निर्मित करना अत्यन्त कठिन है। नृत्यों के अनेक रूपों के उदाहरण हमें पुरातत्त्व अवशेषों, मुद्राओं, इतिहास, साहित्यकारों, कलाकारों और सम्राटों की वंशावलिकों, मूर्तिकला और संगीत में उपलब्ध होता है।

भारत में नृत्यकला मिथ और पौराणिक कथाओं का असाधारण संमिश्रण है और इसी से भारतीय जनता को जनजीवन और धर्य में इसके महत्त्वपूर्ण स्थान के प्रमाण मिलते हैं।

प्राय: नृत्य को भारत में दिव्य उत्पत्ति से जोड़ा जाता है। आख्यानों में वर्णन मिलता है कि एक बार देव इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वह देवताओं के योग्य मनोरंजन की रचना करें, ताकि साधारण जन की पहुंच भी वैदिक प्रज्ञा तक हो सके।

सृंजक ब्रह्मा ने चारों वेदों से प्रमुख विशेषताएं चुनकर पांचवें वेद — नृत्य का बिकास किया।

ऋग्वेद से गीति काव्य, यजुर्वेद से भाव मुद्रा, सामवेद से संगीत तथा अथर्ववेद से भावनात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अंश लेकर नाट्य वेद की रचना की गई। इसके बाद ब्रह्मा ने भरत मुनि को विज्ञान और कला में दक्ष बनाकर नृत्य को लोकप्रिय बनाने का कार्य सौंपा।

लेकिन इतिहासकारों और नृत्य-कला समीक्षकों की धारणा है कि स्थानीय आंचलिक लोकनृत्य ही धीरे-धीरे समय और सभ्यता के विकास के साथ-साथ विकसित होकर श्रेष्ठ परिष्कृत चिरजीवी नृत्य शैली के रूप में उभरकर सामने आए, जिन्हें भरत मुनि ने सिद्धान्त का रूप दिता। भारत में लोकधर्मी नाट्य-परम्पराएं अपना रूप ग्रहण कर चुकी थीं। इन परम्पराओं ने ही नाट्य शास्त्र की निर्माणकला का काम किया।

भरत मुनि का नाट्य शास्त्र रंगमंच पर एक बृहत कोष है। इस शास्त्र के 37 अध्यायों में से पांच सीधे नृत्य से सम्बन्धित हैं। रंगमंच, नृत्य, नाटक, संगीत, वक्तृत्व-कला, अलंकार शास्त्र, सौन्दर्य शास्त्र और व्याकरण पर अलग-अलग अध्याय है। फिर भी भारतीय परम्परा में सभी प्रकार की प्लास्टिक और अभिनय कला नाटक और रंग-मंच द्वारा पराकाष्ठा पर पहुंचे हैं।

नाट्य शास्त्र में भरत मुनि ने नृत्य के दो भाग किए हैं। एक नृता अमूर्त रूढ़शैली के अनुसार अंकित गति और मुद्रा का प्रदर्शन और दूसरा नृत्य—व्याख्यात्मक नृत्य, जिसके द्वारा प्रत्येक गति और चेष्टा को अर्थपूर्ण बनाया जाता है। इसके साथ-साथ नृत्य में ताण्डव नृत्य गतिशीलता और पुरुषोचित गुणों के लिए प्रसिद्ध है और लास्य नृत्य इसका सूक्ष्म, मनोहर, ललित, स्त्रियोचित प्रतिरूप होने के कारण प्रसिद्ध हैं। भारत के सभी नृत्यों के मूल से इन दो प्रमुख नृत्यों की भावभूमि है।

निःसन्देह नृत्य की अपनी भाषा होती है जिसे हम चेष्टा या कृत्य (हावभाव) द्वारा व्याख्यात्मक और अलंकारिक भाषा कह सकते हैं। इस सांकेतिक भाषा में हाथ और उंगलियों की १०५ मुद्राओं द्वारा बोले गए शब्दों की तरह प्रभावशाली अभिव्यक्ति होती है। भारतीय परम्परागत रंगमंच के तीन मूल तत्त्व है—संगीत, काव्य एवं नृत्य। इनका परस्पर गहरा सम्बन्ध है और पूर्ण सफलता के लिए एक-दूसरे पर निर्भर भी करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में यदि हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा, कि हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य की सजीव कल्पना की उपमा यदि मां दुर्गा की असंख्य भुजाओं से या नृत्य के अधिष्टाता नटराज शिव की १२ ताण्डव मुद्राओं से की जाए तो निराधार न होगा। एक ओर एकीकृत नीरवता, शांत समचितता की प्रतीक हैं और दूसरी ओर विभिन्न रूपों में शक्ति का सतत अभिनय है। लोकधर्मी

नृत्यों एवं नाट्यों की पृष्ठभूमि भी प्राचीन परम्परा की कड़ियों से निरन्तर जुड़ी रहती है क्योंकि उसमें मिट्टी की भीनी गंध सदा सुवासित बनी रहती है।

हिमाचल प्रदेश के किसी अखण्डित नृत्य का जिक्र असंभव है। इसकी अपेक्षा हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जनपदों में विभिन्न स्तरों पर लोकनृत्यों की विभिन्न परम्परायें उपलब्ध हैं। प्रत्येक जनपद की लोकनृत्य परम्परा को कला के रूप और शैली के विकास का काल और समय-समय की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में समझना होगा। इनमें जटिल सांस्कृतिक प्रतिमान की विशेषताओं की परतें उपलब्ध हैं, जिनके कारण वह जीवित रहे और फलत-फूलते रहे। हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्यों के विभिन्न रूप समष्टि के ही भाग हैं।

जन-जातीय लाक एवं शिष्टकला नृत्य का अपना-अपना महत्त्व एवं विशेषताएं हैं। हिमाचल प्रदेश में यह सभी लाकनृत्य धीरे-धीरे एक-दूसरे से मिल रहे हैं, एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और कई बार वे साथ-साथ प्रदर्शित हो रहे हैं। इन लोकनृत्यों में विचारों, विषयक्रम और रूपों में गतिशीलता है। बाह्य एवं आन्तरिक प्रभाव समय की गति के साथ आते हैं, जिनसे लोकरंजनी भी अनुप्राणित व प्रभावित होती है और उन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। हिमाचल प्रदेश में नाट्य-कला एवं नृत्य-कला लोक-जीवन में नया रंग और रूप भर देते हैं। आज भी हिमाचल प्रदेश के लोक-जीवन में करियाला, स्वांग, बांठड़ा और आंचली के साथ-साथ विभिन्न जनपदों में असंख्य लोकनृत्य अपनी परम्परागत शैली में प्रदर्शित होते रहते हैं। परन्तु धीरे-धीरे ऐसा लग रहा है कि इन लोकनृत्यों की पृष्ठभूमि में जो ऐतिहासिक पौराणिक या सांस्कृतिक भाव एवं विचार कार्यरत है। उसे लोग प्राय: भूलते जा रहे हैं, जिसके बिना ये लोकनृत्य धीरे-धीरे निष्प्राण होते जाएंगे। इन लोकनृत्यों का विस्तृत परिचय मैंने अपनी पुस्तक "**हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य**" (1978) में किया है। यहां पर मैं कुछ प्रमुख लोकनृत्यों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय दूंगा, जो लोकनृत्य तो है ही साथ में जिनकी पृष्ठभूमि को नृत्य-नाटिका का रूप भी दिया जा सकता है। ये नृत्य-नाटिकाएं जहां एक ओर लोकमनोरंजन का कार्य जिम्मेदाराना ढंग से निष्पादित करेंगी वहां दूसरी ओर ये सच्चे तथा ईमानदार समाज-सुधारक एवं विद्वान निष्पक्ष शिक्षक का कार्य भी करेंगी। कारण लोकनाट्यों में आंचलिक सामाजिक, आर्थिक संघर्षों, पारिवारिक कलह, रूढ़ियों, धार्मिक नियमों या खोखली मान्यताओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्यों एवं लोकनाटकों को अभी तक व्यवस्थित रूप देने का और कोई सुनियोजित प्रयास नहीं किया गया। इसलिए कुछ लोकनृत्यों की समृद्ध पृष्टभूमि का यदि हम गंभीरतापूर्वक अध्ययन करें तो मालूम होगा कि इनमें से कई लोकनृत्यों की पृष्टभूमि में महत्त्वपूर्ण पुराण कथा के अंश भी हैं। जिनका सदुपयोग इन

लोकनृत्यों को लोकनाट्यों या गीतिनाट्यों का मनोहर रूप देकर किया जा सकता है। निःसन्देह इन लोकनृत्यों की प्राण वायु परम्परागत रजकणों से ही स्पन्दन ग्रहण करती है। बिना अतीत से झांके किसी भी लोकपरम्परा को सही रूप से नहीं समझा जा सकता। किन्नर जनपद के कायड़ लोकनृत्य को ही लीजिए। इसके साथ कितनी सुन्दर पुराण कथा जुड़ी हुई है। इस कथा का जिक्र डा० बंशीराम शर्मा अनजान ने अपने एक लेख (हिमभारती, सितम्बर,..) में किया है।

कहते हैं कहीं ऊंची-ऊंची चोटियों में, जो सदा बर्फ से ढकी रहती है, बर्फ का राजा (हिमवान) युकुन्तरस अपनी दो बेटियां गौरी और गंगा के साथ रहता था। एक बार बिष्णु ने महादेव को कहा—'मामा और तो सब ठीक है, परन्तु बिना मामी के काम नहीं चल रहा।' महादेव ने विवाह की स्वीकृति दे दी। भगवान बिष्णु ने अष्टकोरिंड देवताओं को सभी जगह योग्य बधू खोजने का कार्य दिया। सभी असफल रहे। अन्त में बिष्णु और महादेव ने साधु का वेश धारण कर बरफ के राजा युकुन्तरस के पास पहुंचे। युकुन्तरस के महल में सोने, चांदी, लोहे, तांबे, पीतल, सिक्के और लकड़ी के सात द्वार थे। जिन्हें प्रत्येक ड्योढ़ी पर रखे उसी धातु के नगाड़ों को बजाने के बाद खोला गया। युकुन्तरस को इन साधुओं का विवाह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। और वह उन पर क्रोधित हुआ। उसने साधु के वेश में महादेव को भगाने के लिए खूब बर्फ गिराने का निश्चय किया। साधु बाहर बैठे रहे और खूब बर्फ गिरती रही। राजा ने बाहर देखा तो इधर-उधर 12 फुट से ऊंची बर्फ गिर गई थी, परन्तु महादेव पर बर्फ का थोड़ा भी अंश नहीं गिरा था। यह देखकर युकुन्तरस की दोनों कन्यायें गौरी और गंगा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उन दोनों ने अपने पिता को विवाह प्रस्ताव मंजूर करने के लिए मना लिया। स्वीकृति की सूचना मिलते ही महादेव ने बारह सूर्य एक साथ चमकाकर एक ही क्षण में सारी बर्फ पिघला दी।

राजा युकुन्तरस ने विवाह के लिए कुछ शर्तें रखीं। उसने बिष्णु को बताया कि यदि प्रत्येक बाराती एक-एक बकरे का मांस और 20 पथा (18 छटांक के बराबर) नमक खा ले तथा बकरों की खालों को नर्म करके एक ह। रात मे सुखाकर आटा पीसने का खालटा तैयार कर दे, तो वह गौरी का विवाह महादेव से कर देंगे।

बिष्णु ने सब शर्तें मान लीं और निश्चित समय पर महादेव की बारात आ गई। राजा ने प्रत्येक बाराती के लिए बीस पथा नमक, बीस पथा चावल और एक-एक बकरा भेज दिया और बकरो को काटने का एक घन्न दिया। भगवान बिष्णु यह सब समझ गए। उन्होंने सभी बारातियों को कायड नृत्य आरम्भ करने का सुझाव दिया। कायड नृत्य में नर्तन करते हुए वे घन्न को भूमि पर एक सिरे से रगड़ते जाते, जिसके कारण वह घिसते-घिसते वह कुल्हाड़ा बन गया। सभी बकरों को बारी-बारी से काटकर एक-एक टुकड़ा मांस सभी नर्तक नमक लगाकर खाते जाते। कटे बकरों की

खालें पांवों के नीचे दबाकर नर्तकों के पांवों से वे नर्म होती जातीं। शर्तें पूरी हो गयी और गौरी का विवाह महादेव से हो गया। महादेव साथ में गंगा को भी ले आये। इससे आगे सृष्टि की कथा आती है। कायड लोकनृत्य में लोकनाट्य या गीति नाट्य बनने के सभी गुण विद्यमान हैं। इस कायड लोकनृत्य के अनेक रूप हैं, जिनमें बाकायड, थर कायड, छेरकी कायड, नागस कायड, शुना कायड और बोनयांग छू नृत्य इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

थर कायड नृत्य : इस नृत्य में थर (बाघ) की तरह नर्तक लोग तीव्र गति से नाचते हैं। आगे कदम बढ़ाते हैं और पीछे हटते है। इसके नृत्य गीत भी नाटी की तरह ही होते हैं। इस नृत्य में बोर्ची नाटी का लोकगीत गाया जाता है। प्राय: यह नृत्य तभी प्रदर्शित होता है। जब कोई शिकारी बाघ को मारता है। उस अवसर पर शिकारी के सिर पर वीरता की प्रशंसा के लिए पगड़ी बांधी जाती है। और बाघ की खाल में भूसा भरकर उसे नचाया जाता है।

लामा नृत्य :—लामा या प्रेत नृत्य किन्नौर के आदिवासी भिक्षुओं में अधिक लोकप्रिय है। इस नृत्य का आयोजन भूत-प्रेतों को भगाने और प्राकृतिक प्रकोपों को हटाने के लिए किया जाता है। इस नृत्य में सभी नर्तक मुखौटा पहनकर नाचते हैं। नर्तक दल में से दो नर्तक शेर का मुखौटा पहनते हैं। इस नृत्य में शेष नर्तकदल इन दो शेरों को काबू में करने का प्रयत्न करते हैं, जिसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि भूत-प्रेत और आपत्ति को काबू में किया जा सकता है। इन लोकनृत्य के साथ ढोल, लामा, नरसिंगे और शहनाई बजाए जाते हैं। लाहौल-स्थित क्षेत्रों में भी यह लोक नृत्य लोकप्रिय है।

मकर नृत्य :—इसी प्रकार लाहौल-स्पिति का **मकर नृत्य** (ड्रैगन डांस) को भी अधिक सुन्दर एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। इस नृत्य के साथ में एक कथा जुड़ी हुई है। कहते हैं भाट राजाओं में लांग दमी राजा बहुत ही निर्दयी और अत्याचारी था। उसने उस क्षेत्र के धर्म और संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई भी कसर न उठा रखी। उसने अनेक बौद्ध विहारों, पुस्तकालयों को नष्ट किया। अनेक लामाओं को मौत के घाट उतार दिया। वह एक बार जब सार्वजनिक रूप से विजय-उत्सव मना रहा था तो उस दौरान में स्थानीय जनता ने मकर-नृत्य का भी प्रदर्शन किया। लोकनर्तकों में से एक बहादुर नर्तक अपने कपड़ों में छुरा छिपाकर लाया और नाचते-नाचते राजा के समीप पहुंचा और छुरे से दुष्ट राजा की हत्या कर दी। तब से यह लोकनृत्य लाहौल का लोकप्रिय नृत्य समझा जाता है।

लालड़ी नृत्य : – कुल्लू जनपद के लोकनृत्य लालड़ी में लोक नाट्य या गीति नाट्य बनने की असीम संभावनायें हैं। इसमें स्त्री नर्तक दल दो पंक्तियों में बंट जाते हैं और आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। एक दल लोकगीत की एक पंक्ति गाना आरम्भ

करता हुआ कमर झुकाकर दोनों हाथों से तालियां बजाता है और जब तक गीत की एक पंक्ति पूरी नहीं हो जाती, नर्तक पक्ति आगे बढ़ती जाती है और दूसरा नर्तक दल पीछे हटता हुआ नाचता है। जब लोकगीत की पक्तियां पूरी हो जाती हैं, तब पहली पंक्ति वाला नर्तक दल खड़ा हो जाता है और दूसरी नर्तक पंक्ति उसी तरह आगे बढ़ती है। यही संभावनाएं कुल्लू के हरण लोकनृत्य और फागली लोकनृत्य में भी है।

हरण नृत्य :—एक और लोकनृत्य हरण भी बहुत प्रचलित है। यह प्राय: रात को ही संभव है। इसमें दो आदमियों पर उनकी झुकी हुई स्थिति में सफेद और धारी-दार काला पट्ट ओढ़कर हिरन की शक्ल बनाई जाती है। सबसे आगे नाचने वाले के सिर पर लकड़ी के सींग बनाए जाते हैं। उसके चारों ओर दो आदमी उसके साथ-साथ नाचते रहते हैं। उनमें से एक नारी की वेशभूषा पहने होता है। यह चम्बा के लोकनाट्य हरणेतर के रूप में भी प्रदर्शित होता है।

फागली नृत्य :—कुल्लू में फागली का त्यौहार विशेष रूप से मनाया जाता है। इस नृत्य में कुछ विशेष नर्तक राक्षसों का घास-फूंस का लिबास और मुंह पर प्राचीन समय के लकड़ी के बने हुए राक्षसों के मुखौटे लगाकर नाचते हैं। उनका नाच और उनकी गति नि:सन्देह मनुष्य की नहीं होती। एक-एक नर्तक (राक्षस) इस सुन्दर किले में से किसी सुन्दर स्त्री या अच्छी लड़की को तलाश करने का अभिनय करता है, जिससे स्पष्ट होता है कि राक्षसों का परस्पर नाच तो होता ही है, इसके साथ-साथ इस नृत्य में देवता के हाथों राक्षसों की पराजय या दूसरी अवस्था में राक्षस के साथ समझौता की कहानी दोहराई जाती है। इस नृत्य में उन हथियारों का भी प्रदर्शन किया जाता है, जो इस लड़ाई में प्रयोग में लाए गए थे।

सैन नृत्य :—चम्बा के लोकनृत्यों का अपना ही बांकपन है। इन लोक नृत्यों में सैन नृत्य उल्लेखनीय है। हुण्डन की मनवत की यात्रा में सैन नृत्य उल्टे रूप में नाचा जाता है। लोग बायें से दायें ओर नाचते हैं। कहते हैं कि जब प्राचीन काल में सैन नृत्य नाचा जा रहा था, तब एक राक्षस पंगवाल के रूप में दल के साथ होकर मध्य में नाचने लगा। वह किसी की जान लेना चाहता था, परन्तु वह पांगी के दो भाइयों सन्नो और करमू को अपने स्थान से न हटा सका, उन्होंने मौका पाकर सारे नर्तक दल को संकेत किया कि वह सैन नृत्य को उल्टी तरफ से नाचें, ताकि वह राक्षस भाग न सके और साथ-साथ पवित्र धार्मिक ग्रंथों को उच्चारण करते रहें। सैन नृत्य सारी रात चलता रहा। सुबह लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने एक राक्षस का बड़ा मृतक शरीर देखा।

चम्बा का डांगी नृत्य और घुरेही लोकनृत्य में भी यह गुण विद्यमान है। यह लोक नृत्य भी प्रश्नोत्तर नृत्य गीत के साथ आगे बढ़ते हैं। डांगी लोकनृत्य में किसी हरिजन लड़की के प्रति किसी राजा के प्रेम का नृत्य गीत प्राय: गाया जाता है।

घुरेही नृत्य :—घुरेही लोकनृत्य में केवल स्त्रियां ही नाचती हैं। इसमें लोकवाद्यों एवं गीतों के साथ नाचा जाता है। इसे प्राय: दो प्रकार से नाचा जाता है। प्रथम शैली में स्त्रियां घेरे में खड़ी होकर नाचती है। इसके साथ गाये जाने वाले नृत्यगीतों में प्राय: नारी का नख-शिख वर्णन होता है। नर्तन करती हुई स्त्रियां एक-दूसरे की ओर भाव भरा लयात्मक संकेत भी करती जाती हैं और लोकगीत भी गाती जाती हैं। नृत्यगीत प्रश्नोत्तर के रूप में गाया जाता है।

डांगी नृत्य : —यह लोकनृत्य की स्त्रियों में बहुत लोकप्रिय है। यह नृत्यगीत घुरेही नामक नृत्यगीत के साथ प्राय: गाया जाता है। घुरेही नृत्यगीत प्रश्नोत्तर शैली में ही आगे बढ़ता है। इसमें किसी हरिजन लड़की के प्रति किसी राजा के प्रेम का चित्रण है। इसमें लोककथाओं के स्थान पर लोकगीतों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस नृत्य में नर्तक एक गोल दायरे में एक-दूसरे से बाहें मिलाकर नाचते हैं।

कांगड़ा, मंडी, हमीरपुर और ऊना क्षेत्र के लोकनृत्यों में चन्दरौली, स्वांग, भगत और रास लोकनृत्यों को भी समयानुकूल ढालने तथा उन्हें गीति नाट्य का रूप देना संभव है।

चन्दरौली नृत्य :— इस लोकनृत्य का प्रचलन प्राय: शीतऋतु में रहा। इसमें भाग लेने वाले कांगड़ा में बसने वाले प्राय: झीर और जुलाहे होते हैं। इस नृत्य में रौलू कलाकार बन-ठनकर नाचता है और तबलची, लोकगायक और छैणियों वाले इस नृत्य में रंग और रस भरते हैं। केवल एक स्त्री पात्र चन्दरौली ही इस नृत्य की मुख्य कलाकार है। यही दो मुख्य पात्र कृष्ण और राधा का रूप धारण कर हास-विलासमय मुद्रा में मस्त होकर नाचते हैं और शेष पात्र ग्वालों की तरह इनके इर्द-गिर्द नाचते हैं। पालमपुर क्षेत्र में इसी लोकनृत्य को मन्दूल बोलते हैं। इन लोकनृत्यों के साथ मुख्य नृत्यगीत माता दियां भेंटा, भजन और ऋतुगीत गाए जाते हैं।

भगत नृत्य :—इस लोकनृत्य को जीवित रूप में रखने का श्रेय, इस क्षेत्र के झीरों और चमारों को जाता है। इसमें भाग लेने वाले नर्तकों को भगतिये बोलते हैं। इसकी कथावस्तु भी कृष्णलीला के साथ जुड़ी हुई है।

इस नृत्य का आरंभ भी आरती से होता है। फिर विशेष वेषभूषा पहनकर हाथ में डण्डे बजाता हुआ एक नर्तक आता है और अपनी बात कथा द्वारा सुनाकर दर्शकों का मन रिझाता है। इस नर्तक को भी मनसुखा या भगतिया का रौलू कहते हैं। साथ में कृष्ण और गोपियां अपनी लीला रचने लगते हैं। जाति और क्षेत्र के अनुसार इसमें कुछ अन्तर भी आ जाता है। यह लोकनृत्य रात को होता है। नर्तक कई रूपों में नर्तन करते हुए इसे आकर्षक बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस लोकनृत्य के अन्य रूप लोकनाट्य के रूप में प्रदर्शित होते हैं।

रास नृत्य :—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस नृत्य का सम्बन्ध कृष्णलीला से

है। कांगड़ा क्षेत्र में 1947 तक यह लोकनृत्य मरासी और गुसाईं लोग रचाते हैं। रास नृत्य आरती से आरंभ होता है। नर्तक कृष्ण के आगे प्रार्थना करते हैं। रास नृत्य करते हुए गीतों के भाव, रास के लोकनर्तक हाथ पैर या मुंह या शरीर के अन्य अगों को हिला-झुलाकर अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करते हैं। इसमें नर्तकी का नाचना, गाना, मटकना, नखरे करना ही सबसे आकर्षक है। मनसुखा नर्तक के आगे-पीछे नाचता और गाकर कृष्ण की तरह गोपी को रिझाने का प्रयत्न करता है।

स्वांग नृत्य :—स्वांग को भी कई लोगों ने लोकनृत्यों में शामिल किया है, पर वास्तव में यह करयाला, बांठड़ा, देवधान इत्यादि का ही दूसरा नाम है। निःसन्देह इसमें लोकनृत्य, लोकगीत और लोकवाद्य भी एक आवश्यक अग है। इस नृत्य की शैली स्थान-स्थान पर बदली मिलती है। इसमें शामिल होने के लिए दक्ष नर्तक की आवश्यकता होती है यह नृत्य प्राय: विवाह इत्यादि के समय प्रदर्शित होता है। इसे लोकनाट्य के रूप में भी प्रदर्शित किया जाता है।

शिमला क्षेत्र के लोकनृत्यों में दिवाली नृत्य और स्वांग नृत्य में गीति नाट्य के प्रयोग संभव हैं। इसी प्रकार सिरमौरी लोकनृत्यों में स्वांगटेगी नृत्य, द्रौढ़ी नृत्य में भी नए प्रयोगों की बहुत संभावनाएं हैं। इन नृत्यों में उसी ताल और लय में गाथागीतों का समावेश संभव है। इसके अतिरिक्त ठोडा नृत्य की पृष्ठभूमि शिमला जनपद, कुल्लू जनपद और सिरमौर जनपद के नाटी नृत्य में यही संभावनाए विद्यमान हैं।

सही परिपेक्ष में देखा जाए तो वित्तीय परिसीमा के कारण लोकनाट्यों एवं लोक, नृत्यों के मंचन न होने से रंगमंच तो खाली पड़े रहते हैं या बहुत कम संख्या में लोकनृत्यों एवं लोकनाट्यों का अच्छा मंचन संभव हो पाता है। लोकांचलों का अधिकांश भाग अब शहरी वातावरण से अधिकाधिक प्रभावित होता जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश में कुछ क्षेत्रों में नृत्य मंडलियां तो हैं, परन्तु इस व्यवसाय में अधिक कमाई न होने के कारण प्रतिवर्ष बनाकर ऐसी मंडलियां समाप्त भी हो जाती हैं। व्यावसायिक नाट्य नृत्य मंडलियों के अभाव में स्तरीय गीति नाटक, लोकनाटकों एवं लोकनृत्यों में कमी बढ़ती जा रही है। अधुनातन प्रेक्षागृहों की कमी के कारण लोक-नाटक एवं लोकनृत्य सिनेमा और घटिया नृत्यों से प्रतियोगिता करने में असमर्थ रहते हैं। कोई सुनियोजित कार्यक्रम न होने के कारण लोकनृत्य बिखरते, टूटते और नष्ट होते जा रहे हैं। इसके परम्परागत स्वरूप में श्रेष्ठता और सुन्दरता बढ़ने की अपेक्षा घटती जा रही है। वास्तविकता तो यह है कि 'कौआ चला हंस की चाल और अपनी भी खो बैठा।'

लोकनृत्यों, लोकनाट्यों की कमी और उपयुक्त प्रेक्षागृहों तथा रंगकर्मियों आदि की कमी के कारण लोकसंस्कृति की इमेज (Image) धीरे-धीरे धुंधली पड़ती जा रही है क्योंकि शहरी संस्कृति उस पर प्रभाव डालती जा रही है। इसमें सामाजिक और

लोकसांस्कृतिक जागृति की मौलिक प्रवृत्ति का विकास क्रम क्षतिग्रस्त होता जा रहा है। जितनी जल्दी यह ह्रास रुक सके उतना ही हम लोकनृत्यों का वास्तविक स्वरूप सुरक्षित रख सकेंगे।

मैंने बार-बार समय-समय पर यह आग्रह किया है, कि हिमाचल प्रदेश की कला एकादमी के अन्य कार्यों के साथ-साथ यह भी कार्य है कि इन लोकनृत्य को जो बहुत समय तक उपेक्षित रहे, एक मंच पर लाने, निखारने और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उन्हें सुरक्षित रखने के लिए सामयिक, ठोस व्यावहारिक एवं योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाए जायें। इन कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने के लिए शिक्षा विभाग, लोक संपर्क विभाग, पंचायत विभाग, संस्कृति एवं भाषा विभाग, ग्रामीण विकास विभाग का वित्तीय एव प्रशासनिक सहयोग अत्यत्त आवश्यक है। इन विभागों के सहयोग से प्रशिक्षण का योजनाबद्ध नियमित कार्यक्रम चलाया जा सकता है।

मैंने अपनी पुस्तक **'हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य'** में भी दो वर्ष पहले लिखा था कि कला-सृजन की स्वतन्त्रता में सरकार का हस्तक्षेप अनावश्यक एव हानिकारक ही रहता है। पर राज्य ऐसी सामाजिक और कानूनी व्यवस्थाएं पैदा कर सकता है, जिनमें कलाकार अपने आपको पूरी तरह प्रस्तुत कर सके और अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कर सके, क्योंकि सभी कलाओं के मूल में आत्मनिवेदन है। प्रत्येक जाति एवं जनपद का आत्मप्रकाशन अपनी संस्कृति के अनुसार ही संभव है। इसलिए सरकार हिमाचल प्रदेश एकादमी को स्वायत्तता प्रदान करे और उसे प्रतिवर्ष उदारतापूर्ण अनुदान देकर इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

आज अनेक समस्यायें इस सम्बन्ध में मुंह आये खड़ी हैं। आज उन लोकनर्तकों और वाद्यवादकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। यह स्पष्ट है कि वे सब अन्य व्यवसाय द्वारा अपना पेट भर लेते हैं परन्तु फिर भी अपनी परम्परागत धरोहर के प्रति अभी तक समय देते रहते हैं। परन्तु ऐसा कब तक चलता रहेगा? यदि हम चाहते हैं कि इस पर्वतीय जनपद की सांस्कृतिक धरोहर कुछ परम्परायें सत्यं, शिवम्, एवं सुन्दरम् की द्योतक हैं, उनको समाज में आगे ले जाने में कुछ बुराई नहीं आती, अपितु समाज में इनकी मधुरता घोली जा सकती है, तो इस थाथी के परम्परागत कार्यकर्ताओं के जीवनोपार्जन एवं सुधार पर भी ध्यान देना होगा। नगर में आयोजित समारोहों का लाभ नगर के लोग उठा सकते हैं, परन्तु जिन जनपदों के सहारे लोककला आज तक जीवित रही वहां वह भी अर्थ और योजनाबद्ध कार्यक्रम के अभाव में धीरे धीरे लुप्तप्राय हो जाएगी। अच्छा हो यदि एकादमी परम्परागत लोकनृत्य को जीवित रखने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिवर्ष कम-से-कम प्रदेश के पांच प्रसिद्ध मेले जिनमें कुल्लू का दशहरा, मंडी की शिवरात्री, चम्बा का मिंजर, रामपुर का लबी, 15 अप्रैल, 26 जनवरी, नलवाड़ मेलों और सिरमौर का रेणुका मेला के अवसर पर लोकनृत्य कला प्रतियोगिता का आयो-

जन करे और इनमें से प्रथम तीन स्थान प्राप्त श्रेष्ठ दलों को प्रदेश के बाहर भेजने के लिए प्रबन्ध करें। जिला स्तर पर स्कूलों के मुकाबलों में जिला के श्रेष्ठ नतर्क दल का भी एक प्रदर्शन किया जाए और विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित युवक समारोह में भी उनका एक प्रदर्शन अवश्य हो। परन्तु इन प्रदर्शनों में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि लोकनृत्य एवं लोकनाट्यों के प्रदर्शन में वेशभूषा, संगीत, प्रकाश इत्यादि पर सिनेमा छाप बिल्कुल न हों।

राष्ट्रीय स्तर पर कुछ सराहनीय कार्य हुआ है, जैसे ललितकला एकादमी की स्थापना, राष्ट्रीय ड्रामा स्कूल और गणतन्त्र दिवस पर लोकनृत्य समारोह का आयोजन। यही नहीं चोटी के कलाकारों को प्रतिवर्ष पुरस्कृत किया जाता है। क्या यही बात हम राज्य स्तर पर नहीं कर सकते? स्थानीय अनेक सुन्दर लोकनृत्य एवं लोकधर्मी नाट्य रूपों का ह्रास होता जा रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रतिभाशाली नतर्क, संगीतज्ञ और लोकवादकों का एक रजिस्टर बनाया जाए। इसके लिए तहसील एवं ब्लाक स्तर पर प्रतियोगितायें आयोजित कर लोकधर्मी अच्छे कलाकारों को चुनना होगा और उन्हें ही संगठित कर समय-समय अनुदान देकर प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित करना होगा।

राज्य स्तर पर कोई भी व्यावहारिक कदम इस दिशा में नहीं उठाए जा रहे, ताकि लोकनृत्य, लोकनाट्य एवं लोककला की अन्य विधाओं को सुरक्षित रखने, पुनर्जीवित करने और विकास के लिए लोककला के इन रूपों को अपने पर्यावरण-ग्राम-मेलों और मंदिरों के जीवित रखा जा सके। अभी तक सरकार की ओर से लोक संपर्क विभाग के दल को कुछ चुने क्षेत्रों में भेजकर कार्य की पूर्ति की जा रही है। जो केवल प्रचार का कार्य है, इसमें लोककला नहीं है।

जहां उत्तर प्रदेश की रासलीला, बिन्द्रावन और नौटंकी. हरियाणा का स्वांग, बंगाल की जातरा, केरल का कुडियतम, आसाम का पंखिया नाट, महाराष्ट्र का तमाशा और संगीत जैसे लोकधर्मी नाट्यों पर विद्वान अनुसंधान कर रहे हैं। कलाकार दल एवं प्रदेश की एकादमियां एवं सरकार उसे जीवित रखने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। हिमाचल प्रदेश में इस दिशा में उत्साहवर्धक एवं सुनियोजित कार्य अभी तक नहीं हो रहा है। शहरी चकाचौंध से प्रभावित नौकरशाही एवं राजनीतिज्ञों को ग्रामीण कला से दुर्गंध आती है। इसलिए वे इस दिशा में पग उठाने की बात उपहासास्पद ही समझते हैं। गांव-गांव के उत्सव, त्यौहार और मेले, देवी-देवता और मंदिर की ओर जनता रुचि धीरे-धीरे मिटती-सी जा रही है और उसका स्थान राजनितिज्ञ द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम ने जिनमें राजनीतिज्ञों के लम्बे-लम्बे भाषण रहते, ले लिया है। यह कृत्रिम संस्कृति कब तक जीवित रह पाएगी।

सार्वजनिक संचार साधनों की चकाचौंध में ग्रामीण संस्कृति पुरम रही है। परन्तु अभी भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत जन

लोकनृत्य दलों एवं लोकवादकों को सदुपयोग जो देवी-देवताओं के मंदिरों की आय राजा-महाराजाओं या प्रभावशाली लोगों के प्रोत्साहन पर निर्भर करते थे, योजनाबद्ध रूप में उन्हीं जनपदों के लिए काम में लाया जा सकता है। राज्य को एक ऐसे कोष (फण्ड) की स्थापना करनी होगी, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों और व्यवसायक दलों को वर्ष भर में कम-से-कम मंचन के आधार पर सहायता अनुदान प्रदान किया जा सके इससे जीवन निर्वाह का मूल आधार बन जाएगा। इस आय को वह अधिक मंचन एवं प्रदर्शन से बढ़ा भी सकते हैं।

लोकनृत्यों, लोकनाट्यों एवं लोकसंस्कृति पर आधारित समारोहों का आयोजन अभी तक नगरों या उपनगरों तक ही सीमित रहा है। उन ग्रामीण लोगों के लिए जिनकी वह कला है, कितने मंचन हुए हैं? एकादमी का मूल कार्य, लोककला, लोकसंस्कृति एवं लोकभाषा के अनेक रूपों को सुरक्षित, पुनर्जीवित तथा विकसित करना है। इस दिशा में किए गए अभी तक कार्य के ब्योरा से निराशा ही होती है।

किन्नौरी लोकनृत्यों के प्रदर्शन के लिए किन्नौर के गांव में महासुई एवं सिरमौरी लोकनृत्यों के लिए शिमला के ग्रामों में चम्बा, कुल्लू एवं लाहौल स्पिति के लिए उन क्षेत्रों के ग्रामों में आज तक कितने प्रदर्शन आयोजित किए गए? क्यों नहीं चम्बा के लिए भरभौर उत्सव, कुल्लू के लिए नगर उत्सव, किन्नौरके लिए सांगला उत्सव, शिमला के लिए हाटकोटी उत्सव, हमीरपुर के लिए सुजानपुर तीहरा उत्सव, गुलेर कांगड़ा उत्सव, नयनादेवी उत्सव, कमरूनाग उत्सव और सिरमौर के लिए सिरमौरी ताल उत्सव मनाया जा सकता है?

इसी प्रकार इस क्षेत्र में जिन कलाकारों ने नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से प्रशिक्षण पाया है, जिन्हें लोकधर्मी परम्पराओं एवं लोकनृत्य से सहानुभूति हो, तथा इस क्षेत्र के श्रेष्ठ कलाकारों का विशेष दल गठित किया जा सकता, जो इस लोककला के विशेष ग्रामों में जाकर नए युवकों को प्रशिक्षित करने के लिए कैम्प का आयोजन करें और उनसे कुछ सीख और कुछ उन्हें भी सिखायें। ऐसे कदम सामाजिक परिवर्तन में कैसे रुकावट बन सकते हैं?

इन सारी योजनाओं को कार्यान्वित करने तथा वित्तीय साधनों की जांच के लिए विशेषज्ञों की एक समिति की व्यावहारिक सुझावों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए कहा जाए। लोककला की सुरक्षा एवं विकास पर व्यय की गई धनराशि लोकजीवन को बनाने संवारने के लिए व्यर्थ नहीं समझी जानी जाहिए। लोककल्याणकारी राज्य में ऐसे कदम अत्यंत आवश्यक है।

यह सभी सुझाव इसलिए प्रस्तुत कर रहा हूं, कि समय हमारे हाथ से निकलता जा रहा है और यदि अब हम उत्साह और साहस से कार्य नहीं करेंगे, तो हमारे पास केवल अनुसंधान के लिए ही कुछ समाग्री बच जाएगी। ग्राम्य संस्कृति की समृद्ध एवं डायनामों की धरोहर का स्थान बम्बई की घटिया फिल्मों का स्टीम रोलर ले लेगा।

10

हिमाचली बुझारतें/पहेलियां

हिमाचली बुझारतें या पहेलियां भी लोकसाहित्य में एक विशेष स्थान रखतीं हैं। सर्दियों में जब पहाड़ों में बर्फ गिर रही होती है और चारों ओर शीत का साम्रज्य छाया होता है, गांव-गांव में लोग चूल्हे या जलती हुई अंगीठी को घेर कर बैठ जाते हैं और बुझारतें प्रारंभ हो जाती हैं। यदि उत्तर मिल गया तो ठीक है, नहीं तो पहेली कहने वाला गेहूं, चावल, माश या किसी भी अनाज का दाना मांगता है, जब मिल जाता है, तो उत्तर भी बता देता है।

पहेलियां बहुत समय से मानव जीवन की एक ऐसी लोकपरम्परा रही है, जिसका विश्व के समस्त लोकसाहित्य में विशेष स्थान रहा है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक यह परम्परा विश्व के सभी देशों में और सभी भाषाओं में अबाध गति से विद्यमान रही है।"

मानव ने जब प्रकृति के रहस्यों को समझने का प्रयास किया होगा, तभी पहेलियों का भी जन्म हुआ होगा। वैदिककाल से ही अश्वमेधादि यज्ञों के समय वैदिक होतृ और ब्राह्मणों के लिए ब्रह्मोदय के रूप में पहेलियों का एक विशिष्ट स्वरूप प्रचलित हो गया था। तब से लेकर अब तक पहेलियां बूझना उच्च कोटि के मनोविनोद के अन्तर्गत मान लिया गया। वात्स्यायन के कामसूत्र में चर्चा और मनोविनोद में काव्य-पहेलियों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यही लोकपरम्परा अमीर खुसरो और बीरबल की छन्दोबद्ध रचनाओं में विकसित हुई। संस्कृत साहित्य में पहेलियों को भी चौंसठ कलाओं में रखा गया है।

आज के शिष्ट साहित्य के रसिक तो इन्हें बच्चों के लिए उचित समझते हैं, परन्तु ग्रामीण लोग आज भी उसे उसी तरह देखते हैं, जैसे प्राचीन काल में। एक ही नियम है, कि पहेलियां सर्दियों में ही कही जाती हैं, जब फसल भण्डार में भर दी जाती है। आगे पीछे पहेलियों के लिए अनुरोध करने बड़े बूढ़े कह देते हैं—"धान पालो जाओ"

अर्थात धान में दाना नहीं लगता। पहेलियों की इसी लोकप्रियता के कारण हिमाचल प्रदेश में पहेलियों का अथाह भंडार ग्राम्य साहित्य को समृद्ध करता है। लोकसाहित्य की मौखिक परम्परा में पहेलियों का विशेष महत्त्व है।

फ्रेजर के अनुसार पहेलियों का जन्म उस वक्त हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट बात कहने में किसी प्रकार की कुछ अड़चन या असुविधा पड़ी होगी। एक बात तो स्पष्ट हो रही है, कि जानकार बड़े-बूढ़े, युवा पीढ़ी के ज्ञान की परख इसी प्रकार करते होंगे। इस प्रकार यह एक प्रकार का बुद्धि वैभव का खेल बन जाता है। प्रायः वक्ता पहेलियों द्वारा दूसरे के ज्ञान को चुनौती देता है।

पहेलियों को हम प्रायः दो वर्गों में रख सकते हैं—पहला, शिष्ट या शिक्षित समाज में काव्य विलास के रूप में पहेलियों का निर्माण होना। दूसरा लोकपहेलियां, जिसमें ग्रामीण समाज अधिक रुचि लेता है। जैसे

आर छलाका पार छलाका
मांझी पाणियै जमटू पाका (मक्खन)

या एक ओर पहेली द्वारा प्रश्नकर्ता पूछता ऐ—बताओ,

तीरी आऊ, तीरी जाऊ
डाग नहीं मांछौ खाऊ

प्रायः प्रत्येक पहेली में तुकबंदी अवश्य रहती है। परन्तु ऐसा सभी पहेलियों में नहीं होता, जैसे एक अन्य पहेली है।

इसी इसी काह डेऊओ (दृष्टि)

ऐसी ही असंख्य पहेलियों में से कुछ चुनी हुई पहेलियां मैं प्रस्तुत कर रहा हूं।

अड़कन खड़कन शीलो बखरैल
खड़ी पुंजड़ीयै नाचो बरैल (सिलाई मशीन)

अग्गे जम्मीं हाऊं कूड़ी पीछे जम्मेया भय्या,
दान्द पचीकू बाबा जम्मेआ, पिच्छे जम्मीं मैया। कपास

चीकड़ कित्या चाभड़ कीत्ता, नौ मण कित्ता गारा,
सौ सठ सेली पाणी जो चली, नगर चल्या सारा। मकोड़ी

सेठे चकी सेठनी, सेठणीए चकेआ लट्टा फट्टा,
बूझड़ी ता बूझ नईं ता देओआ टका टका। शहतीर

अम्बर बजी ढोकली प्याला लगेआ ब्याह,
अपणेआं याणेयां सयाणेयां पूछ बाझी बिउएं क्या? खुब

धारे परे ते आया स्वामी, आपू छोटा दाढ़ी लम्बी। जौ

1. दि गोल्डन बो, अंक 9 पृष्ठ 121-22.

माह, कपाह, कसूम्भा ककड़ी, चार चीजा एक लकड़ी। सिम्बल

संहस्त्र बुद्धिये लटकी रहे, बीह बुद्धिये चले तवाणे,
खरे ते बचारे इक बुधिये, जिन्हें जे पहले किते ठकाणे। मेंढक

पारली धारा एक गन्धेला,
आपूं बैद आपूं चेला। कांटा

लगाणे ते लगदी नी, लगाणे बाझी पुगदी नी,
धन तिन्हा रे भाग जिन्हओं लगदी दी। टल्ली

लगे लगे करो ता लगदे नी,
मत मत करो ता लगी जाहें। होंड

मौ बैठी रही पुत्र छानी चढ़ी गया। धूंआ

मौ टेड मटेडी पुत्र गोल मटोला। कद्दू

अंवारी भो भित्त, ता पार भी भित्त,
मंझी मंझा सुइने री लित। आग

मेरा भेंडू कान मरोड़ू,
अन्दर खुण्डलू बाहर जोड़ू। चाबी ताला

अन्दर बकरी बाहर जोड़ू,
निकल वे बकरिये खाऊं मरोड़ू। सराली और उसकी बेल

मंझ रोपे सिद्ध पन्या, देही रा भारी दुनिया रा वापरी। कोल्हू

इक रसड़ी, तिसा जो न हड्डु न पसड़ी। जोंक

नीली गाठी चौल बाधे,
दिना गवाचे राती लभे। तारे

पांज मिथणू मिथदे थे, बत्ती कुपणू कुटदे थे,
राणी कंगोटो नचदी थी, राणा कंगोटा खींचदा था।
पांच उंगली, बत्तीस दान्त, जीभ, गला

हाड़कू मुड़कू रखे, टोडरा रा नाला,
आपूं कोही बेठी चीला रे डाला। तरड़ी, बेल सहित, भूमिगत सब्जी

थाले बैठी झप झपी, गास बैठआ राव,
कण्ढे बैठी मेनकी, गण गण दफेआं लाओ। आग, तवा, रसोइन, रोटी

ठुठलुआ घराटा, हाथी घोड़े सारे पहिते,
पाव नी पोहता आटा। शीशा, दर्पण

ढकी ढुकी बठालणा, हुज्जी-हुज्जी उठालणा, ऐहंकलू

उड्ते ता छण छणाये, बैठे ता फंघ ढलाए,
तीन चार पंछी मारी आया आपूं एक नी खाया। मछली का जाल

घम चक घम चक छ: जंघा इक नक । तकड़ी
नौ नारी एक कंचुआ, कस्तूरी जेही बास,
बूझो पढ़ो पण्डित कि बूझो देवीदास । खट्टा
पारलेआ जान्देआ हेड़िआ, तेरी गठी हींग,
तेस जानवरा जो मारेआं, जिसजो नौ सौं सींग । साही (सैहला)
छिछरू जहे बुटड़ू, घन्देलू रा दाणा,
बुझणा ता बुझ, नईं ता इत्थी नी औणा । धनिया
पंछी पया खेत, नौ चूंजा एक पेट । दन्दालटी
हरना भई हरना, काला बण चरना,
पत्थरु रा पाणी पीणा, लालड़ू घर करना । उस्तरा
हाक पाई समताणे, सुणआा भ्राड़ी रे ठाणे,
इन्हा परलेआं रे इक परौहणा आई रा तिने जांघा दित्ती री सराणे । कुत्ता
अलस पसल का बिन्ना,
न आगी जलो, न पाणिये सिन्ना । परछाईं
पंजे छवे दित्या धक्का, पया बिच बजार,
चिड़ूयें, कुक्कड़ यें दित्या धक्का, पया समुन्द्रा पार । यराह
दसें घड़ी पांजे पौड़े ते उतारी,
सेकड़े ओबरे वठाली । रोटी
अलस पलस का विन्ना,
अग्गी जले ना पाणियें सिन्नां । छौरा
अस्सी गज घगरी, पचासी गज फेर,
तूं नीं मेरी भावी मैं नीं तेरा देर । अम्बरे दी बिजली
आ घनैया जा घनैया, घरे घरे दियां रोटियां खांदा,
फिरी वी भुखा रैहन्दी । घराट
इक छोकरी, धारा पर शिरे खलारी बैठियो । बगड़
इक छोकरी जबरूये रूआन्दी रैहन्दी । पिपल
इक छोहरू टुक टुक करदा रैहन्दा । तखांड़ चिड़ा
इक फोहलणीं सेह गले च खोहलणीं । कुरता
ईड़ा बीड़ा वाहणां पहिया जमदा बीड़ा । कज्जल
उपर तन्त्र हेठ बजन्त्र,
बाजा बजदा नड़ें नड़ें । हुक्का
काला हुंडू लाल भत्त,
सणैं हुंडुयें गड़प । धूड़ा

टिक टिक धरत कलन्तो,
तिन मुड़िया दस पैर चलन्तो । किसान
चिट-चिट डुगड़ी चट्टके मारी होई,
दस जुण खाणा बैठे, रजनु न कोई । हुक्का
चार चिड़ियां लगियां चरवाकर,
दो खड़ियां दो लगियां नाचन । थन
हरी थी ता खड़ी थी,
हिरे रे बागा मां जड़ी थी । मक्की
चीरूआं पट्ठा धिमुड़ुआं दांणा
मेरी फलूणी न बुम्झा से लवाणा धनियां
उवार पार कोठड़ी, लुहोएं चढ़े मित्त,
खाणा पीणा पलेदा पाहरा दिण नित । चूल्हा
ओघा मोघा इक फल राजे जोघा केला
इक रुख उसेरा चढ़ने रा बड़ा दुःख केले का वृक्ष
काठा री हण्डी, मांसा री डोई,
छेदा दिन्दा हर कोई । कुण्ड
चौबी चक्के, चौबी किनारे,
एड्डी दिल्ली, दो बणजारे । सूर्य और चान्द
आऊं गो थू, मुजो दित्ता थू,
आऊं चली आ थू, सो तिठिए थू । चकला
पार फाटे होठी सुलकी साप
चीच मचीची खाई लैणी,
लाहलो कम्में लाई लैणी । भेड़ की खाल
ओ आई ओ गई नजर
आ ता राजा गोता गीदड़ बर्फ
न्हेरी ओवरी कैर बाही पानी
पार फाटा चिलकन्दा चक्का तवीत
पार फोट अक जंघिया हक्का दिन्दा कुल्हाड़ी
उपरोरी करी आ भम्मा,
अपु छोटा दाढ़ा लम्मा जौ
वेही पुर डब्बा
तू घुवाड़ना कि तेरे बब्बा लौंग
मैह बैठी चभड़े चिमहट गो चरने । कद्दू की बेल

उवारे भी जोड़ी पारे भी जोड़ी,
छलुआ खा मरोड़ी। ककड़ी
थुक लाई मरोड़ना
ध्यान लाई घुसोड़ना सूई में धागा डालना
आ ता गण बठा ता राजा,
गो ता गिदड़, चलुआ ता पाजा। बर्फ
पार फाटे भुक पाणी,
भर विवड़ी पी पाणी,
फिर बुदड़ी दी पाणी थन
अम्बर बज्जी ढोलकी, प्याल लग्या ब्याह,
याण्यां सयाण्यां पुछि लैं बाजि बिये क्या ? कुक्करमुत्ता
आर माधो पार माधो, बिच माधो खेड़दा,
कौडियां रे ढेर लग्गे, बिच फुल्लां तोड़दा। एई बेलना
अरस परस का बिन्ना,
अग्गीं जले पाणिये सिन्ना। परछाई
धारा परे ते आया स्वामी,
अप्पू छोटा दाढ़ी लामी। जौ
कटोरे में कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा। गरी-गोला
नीली चादर चार किनारे,
एड्डी दिल्ली दो बणजारे। चांद-सूरज
काली मां गोरे पूत, नई नई इन में करतूत,
दोनों में है लाग, इक ठंडा दूजा आग। चांद-सूरज
सफेद इक कुकड़ी, हरि तिसारी पुछ,
बुझड़ां तां बुझ, नहीं तां अपणी दादी पुछ। मूली
देख्या इक हौवा, तिसरे पेटा सौ ढौवा। लालमिर्च
चढ़ चौके बैठी राणी,
सिर पर आग बदन में पाणी। हुक्का-कटोरी
आर भित पार भित, मंझा स्यूने री लित। आग
मुट्ठ भर बेल, चंगेरी बराबर फुल,
कच्चे कच्चे तोड़ि लैणे, पक्यां रा पाणा मुल। घढ़े
चार पट्टी चार पावे, चार सुरमादाणियां,
झंग तोता बोलदा, कल फौजां आणियां। विवाह वेदी
इक दाणा दलया, सारा अन्दर भरया। लैम्प

पोहलणी कठोहलणी, द्वारा बिच खोलणी । — जूता

पंजे भाउयें ज्वान मरोड़या, जाई नित्या गलगन्नी,
पंजो भाउ हटि आते, ज्वान लेया भन्नी । — ग्रास

चितली बकरी चितले कन,
चल मेरी बकरी दिल्लिया कम । — चिट्ठी

इक राजा तिसरे गला धागा,
धागा खिज्या राजा रिंग्या । — चरखा

रूखे झुण्ड सपेदी न्वारी,
उठे कुमल हुई गए भारी । — रुपया

ठेवो ठईं पत्त बड़ा कि बिण्डु नईं । — कुम्हार का चाक

काला हण्डु लाल भत्त, सणे हण्डुए गड़प । — अंजीर

दो कन दो बांह, पेट बड़ा जंघां कुतांह । — कमीज

एत्थी पेई तिजो, उत्थी तेरयौं नैंदयों । — नींद

लोहे री आदा, लाकड़ा री खाल,
मिठियां गल्लां करां, बुरा बोले मजाल । — रेडियो

मौ जम्मीनी, पुत छन्नी नी । — धुआं

ऊं का तू तेरे बाबे ला माटी का मूंह । — धौंकनी

पारा ओडू आवो रूड़राड़,
तेऊ मुण्डे दी इक शराड़ । — मशाण

इक वैहण मेरी ऐंणी,
चुंजणी चूणा पुजड़ीं वूणा । — सुई

राती रितौंक मिली मरचण्डा,
तंखा ना जाऊणो राचै राजपुत्रा हण्डा । — मेंडक

उड़कू लुड़कू सूनो नाहड़ों,
तेरो बाप मेरो घुवाड़ो । — अर्गला

डुगरी डुग्गी सौं णो करा,
धनिये पाच गई तरा । — पूरी

ऊंचे कोठे तंग तौड़ी,
हरण बीती खांदा कौड़ी । — रीठा

पेठी पड़छै ढुं ढुदस,
तेउ दी नै त्थी अड़न मस । — परछाईं

चंगे न मैंगे ढेंकले, चंगो मैंगो सेब,
तेरे न भुजिया दोश लागा न तेरे देव । — नरसिंगा

झकड़ा का निकड़ो लूतड़,
दुई टांगा एक चूतड़ । — काँटा

इक बैहण मेरी ऐणी,
मुठी दा औका, कोहे नी ओका । — बन्दूक

हे भगवान तेरी बाणी,
सरग बीजां छप्पर पाणी । — बर्फ

आगो आगो लप लपैंदी,
पाछो काड़े कामल छैं दी । — आग

गए का पड़े लोई लट,
दोहनी मोशे सो सट । — ओखली मूसल

लाल लाल लोरे, फिरदा वैस्यो पोरे । — आग

आर भी झूलो, पार भी झूलो,
मंझा नाला रे फागुणो फूलो । — मक्खन

वाये विण्डे बाकरी चौरो,
पाणी सूक्यो बाकरी मौरो । — दीया

काठो काठनू लोहे दापू,
मैं दें दो औरी लै न खांदो आपू । — ताला

कालो हाण्डकू कालो ही भात,
सत हाण्ड कुए घुटा घाट । — कथ

टुण्डे मुण्डे बाकरे मुण्डे लाए रस,
बोर डिगो मैन्दी लै बोरे के नस । — गिरनी

ऐ तरुखों घुकतु ऐतरे को पेट,
कि चौलो घुकतु मण्डी-सकेत । — तकली

पारा ओस आव दन्त फिचकणै,
अपणे बावला बोले बाहरि निकलै — सूरज

उच्चे कीठे ट्यूली रूआ,
आँख्या घिचड़ न मुंठु धोआ । — कथी

इमणी मिमणी मुंह माखै,
चौन मूण्ड छौ आंखै । — दो बैल एक हाथी

इन्दी रोटे मण्डी ।
मण्डी रोटे इन्दी । — तवा

पारो ओरू औव कुवड़ काणो,
मंझै द्रुमणै पड़ो त्वाणो । — नगाड़ा

चार चिड़ियां चराकण लगियां,
दो खड़ियां दो नाचत लगियां। दुहते हुए गाय के थन
टक टक टँचू धैरत फलन्तु,
तिन मुंडियां दस पैर चलन्तु। कसान बेलों को जोते हुए
चौबी चक चौबीस किनारे,
ऐड़ी दिल्ली दो बनजारे। चांद और सूर्य
हिम्मां भाई हिम्मां,
लकड़ुए दा पानी ते पानिए दा ढिम्मां। गुड़
धारा राइयां काकड़ियां, बुछवाड़े जम्मी बेल,
जब्बरुए दी मुच्छा मुन्नी, अन्दर पैई खेल। धरातल
धारा ते आया भम्मां,
अप्पु छोटा दाढ़ा लम्मां। जौ
धारा ते आई गंगी,
दो पट्टुआं दा चोलू लंदी,
पर पिट्ठी दी फिर नंगी। मक्खी
कंधा मं डब्बा,
से तुध धुआड़ना,
कि तेरे वोव्वा। मधुमक्खी छत्ता
चीरुआं पट्टा चमीरुआं दाणा,
मेरों फलुणी न बुझा तसेरा वोव लवाणा। धुनियां
ए चू मे चू,
मेरी फलूड़ी न बुझे,
ता तेरी खाखा पेचूं। ताला
हरी हरी डण्डी रूपे रा छज्ज,
सन्नी कटोरी खूब तेरा पत्र। नरकूफूल
चुजंगू उपर दूजंगू,
अते हच्छे उपर काला। मेड़ पर कौआ
अक मेरे मामा री वगड़ी हा,
से संझा वाणी तै भयागा वडी लैणी। तारे
कपला कपला गा,
से खड़े खड़े रुखा खा। आग
आ ता गण,
बैइठा ता राजा। बर्फ

काली थी कलोतन थी,	
काले कपड़े लांदी थी,	
नंगी हो के डरांदी थी।	तलवार
अन्न खाई पानी न पीए से कुण।	घुन जो आटे में लगता है
इकाट बाट तंत्र पंत्र सौंगी लगदा जोर,	
भाभो गई पेइए जो कुनी खड़ाणा मोर।	चरखा
बाई कौड़ी जम्मी सुपारी,	
बाप पेटे पुत्र व्यापारी।	पोस्त का पौधा

किन्नरी पहेलियां

फाचे नाकपो लखातोन मारवो।	सारंग
छुपो पोमो नाढक ठुले।	दीपक का जलना
येन जेक के नांग दो लाणू,	
मारणो चल गंय्या छोत।	पोहलटु पकाना
भागा जेक के जुंग ना रोटी,	
फेचाक जेंक छोत।	चांद
तुम पे जे मेत।	बर्तन से पानी भरना
आबी लुक-लुक	
सूणा ला डोक।	नाक साफ करना
मिदा चू पांगलेप ढाका।	दस नाखून बताना
नांक ढंक मा छोत।	मकान का खम्बा
फा का तेरा।	छत
मा डणे ना कमा।	छत की कालिख
फुं लिग मां।	धुंआ
फुं जेक के नागना,	
थुक वारा खांक।	दांत
ढोरी न कयो ला टोमा फेजर	तारे
आ छामा छोत।	लाल मिर्च
ग्योक शाह ने ख्योत गथेक,	
गुं फिदा में थोन।	घराट
मा फार तो दौत,	
साली यौत पो छै।	आग धुंआ
गो किरा ला काङ् थेकपा।	ढोल

रीङ्जा ने खेत सांङ्,
रीयामेत चम फ़्ना लेप था मेत । — सड़क
छोक तेन वे लदोश ला गुमा पिजरीक । — तकली
जुलं जुलं ने सड़ डोग खागम् । — अंगूर की बेल
आबूवा जिक ख्योमा दोश । — पशु का मूतना
खाङ्गचे देमो ला ड़ा । — अखरोट
खालवा कारवो ला यूथे मजर छोब । — शलगम

पहेलियों में प्रस्तुत विषय-वस्तु युग के साथ परिवर्तित होती रहती है प्राय: साधारण लोकगीतों की तरह पहेलियों में सामाजिक दृष्टिकोण, अन्धविश्वास एवं लोक-परम्परा भी प्रकट हो जाते हैं। कोई भी नई चीज लोकजीवन में आई नहीं कि पहेली निर्माण का आधार बन गई। पहेली-निर्माता की कल्पना किस दिशा में मुड़ जाएगी, इसका निर्धारण करना सहज नहीं है। उनकी रुचि रहन-सहन, सामान्य विचार एवं सामाजिक वातावरण की जानकारी के बिना इन हिमाचली पहाड़ियों का उत्तर देना कठिन हो जाता है।

हिमाचल के प्रत्येक जनपद में हमें ऐसी पहेलियां भी सुनने को मिलती हैं, जिन पर नगर की भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हो सकता है इनमें से कई पहेलियां भारत के अन्य जनपदों में भी प्रचलित हों।

11

हिमाचल सम्बन्धी संदर्भ ग्रंथ

अरविन्द जनक : 'किन्नर प्रदेश के निवासी' पृ० 91-95, कुल्लू प्रदेश के निवासी—पृ० 96-103, 'पांगी प्रदेश के निवासी'—पृ० 104-109, भारत के आदिवासी दी इण्डियन पब्लिकेशंस अम्बाला।

कौशल, रामकृष्ण : कमनीय किन्नौर : कुमार संन्ज, सोलन, 1963 : 115 पृष्ट, सचित्र।

: हिमानियों के देश में : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1966 : 135 पृष्ठ।

गुप्त, के० डी० : 'पांगी की घाटियों में' : हिमप्रस्थ, नवम्बर 1959, पृ० 18-20।

: 'पांगी की वादियां' हिमप्रस्थ, फरवरी 1960, पृ० 22-23।

चावला, इ० न० : रोहतांग के पार : प्रवेश प्रकाशन, पटियाला, 1965 126 पृष्ठ।

चौहान, हरदयाल सिंह : हिमाचल का उत्तर-पश्चिमी छोर—पांगी हिमप्रस्थ, मार्च 1965, पृ० 16-19।

जस्टा, हरिराम : हिमांचल गौरव : सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1971, 92 पृष्ठ, सचित्र।

ठाकुर, कला : 'पांगी की विचित्र मान्यताएं' : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1960 पृ० 58-59।

धीरेन्द्र : 'सुरम्य पांगी घाटी' : हिमप्रस्थ जुलाई, 1965 पृ० 35-36, 43।

नेगी, गोपाल चन्द्र : 'किन्नर अथवा किन्नर प्रदेश, शिमला' : भारत सेवक

समाज, 1960, पृष्ठ 28, सचित्र।

प्रार्थी लालचन्द : **कुलुत देश की कहानी** : नील कमल प्रकाशन, कुल्लू, 1972, 284 पृष्ठ और 14 सचित्र।

भगवती शरण सिंह : हिमनील : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 1969।

मनोहर लाल : 'कांगड़ा के गद्दी—दिनचर्या तथा परिचय'; **हिमप्रस्थ**, फरवरी, 1963 : पृ० 39-56।

लोक साहित्य

काश्यप पदमचन्द : कुल्लुई लोकसाहित्य : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, 333 पृ०।

कात्यायन, हृ० कान्त : मण्डयाली और उसका लोकसाहित्य : कुमार सन्ज, सोलन, 1974, 162 पृ० सचित्र।

धीर, नरेन्द्र : हिमानी लोक साहित्य : नीरज प्रकाशन, लुधियाना, 1961, 308 पृ०।

सांस्कृत्यायन, राहुल : **हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास** (षोडश भाग) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० 2016, 'कुल्लुई लोकसाहित्य', 'पृ० 691-710, 'कांगड़ी लोकसाहित्य' पृ० 571-580, 'चंबियाली लोक साहित्य' पृ० 613-26।

शर्मा बंशीराम : 'किन्नर लोकसाहित्य' : ललित प्रकाशन, लेहड़ी सरल, विलासपुर 1676, 414 पृष्ठ, सचित्र।

व्यथित, गौतम शर्मा : हिमाचल प्रदेश : लोकसस्कृति और साहित्य (दिल्ली, बुक ट्रस्ट, 1980)।

4 लोकगीत

उपाध्याय, सोमदेव : मधुमास के गीतों की मधुरिमा : हिमप्रस्थ, जनवरी, 1960, पृ० 66-67।

अत्रेय, कांशीराम : मण्डयाली लोकगीतों में भावसौन्दर्य : सामसी, अप्रैल, 1976, पृ० 59-64।

आत्माराम : कांगड़ा वादी में विवाह गीत, जन-साहित्य, मई-जुलाई 1966, पृ० 325-26।

कपिला मुंशीराम : चम्बा का लोकगीत, हिमप्रस्थ, जनवरी, 1959 पृ० 61-64।

कात्यायन, हेकान्त : मण्डयाली लोक गीतों में बहिन गई : हिमप्रस्थ, मार्च 1973, पृ० 32-36।

कत्यायन हे० कान्त : मण्डयाली लोकगीतों में वियांग श्रंगारे : हिमप्रस्थ

मार्च, 1975 पृ० 29-31 ।

कश्यप, पदमचन्द : 'लामण में राष्ट्रीयता की भावना' हिमप्रस्थ, मार्च, 1963 पृ० 36-37, 39 ।

कायथ, कृष्णचन्द : हिमाचली लोकगीतों में गीता दर्शन, हिम भारती, मार्च, 1970, पृ० 42-45 ।

किन्नर, खीम सिंह : 'किन्नर गीत' : हिमप्रस्थ, मार्च, 1956, पृ० 40-41

केशव आनन्द : 'बरलाज' : सामसी, जुलाई, 1975 पृ० 35-40 ।

: 'लोकगीत-चेत्रमासी रली' : हिमप्रस्थ, जुलाई 1969, पृ० : 23-28 ।

: 'विलासपुर का कोकगीत, गिद्दा' हिमप्रस्थ, अगस्त, 1963, पृ० 61-62 ।

कौशल, भारतेन्दु : 'कांगड़ा के लोकगीतों में देशप्रेम' : जन साहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 181-84 ।

कौशल, रामकृष्ण : 'किन्नर लोकगीतों का भावलोक', हिमप्रस्थ, अगस्त, 1967, पृ० 63-68 ।

: 'कांगड़ा क्षेत्र के संस्कार गीत' : सामसी, जुलाई, 1976 पृष्ठ 19-28 ।

कौशल्य, ज्वाला प्रसाद : 'हिमाचली लोकगीतों में रस सौष्ठव', हिमप्रस्थ, जुलाई, 1968, पृष्ठ 30-36 ।

खजूरिया, सीताराम : 'विलासपुर लोकगीत'—मांहरणः सामसी, अप्रैल, 1976 पृष्ठ 67-68 ।

गुप्त, ललिता देवी : 'कांगड़ा प्रदेश में पींग (झूला) गीत', हिमप्रस्थ, सितम्बर, 1976, पृ० 8-11-21 ।

गुलेरी पीयूष : 'कांगड़ा के संस्कार गीत', हिमप्रस्थ, जनवरी, 1975, पृष्ठ 40-42 ।

गोबर्धन सिंह : 'जुब्बल की नारियों के प्रेम-गीत', धर्मयुग, मई 26, 1962, पृ० 41-43 रंगीन चित्र ।

: 'जुब्बल लोकगीत और नृत्य' : पंचजगत (शिमला) अक्टूबर, 1962, पृ० 24-25, सचित्र ।

: 'जुब्बल के लोकगीत', हिमप्रस्थ, मार्च, 1966 पृ० 43-45 ।

: 'जुब्बल के लोकगीतों में वीर रस' : पंचजगत, मई, 1964, पृ० 31-35 ।

: 'जुब्बल के हास्य रस के लोकगीत' : हिमप्रस्थ, नवम्बर, 1962, पृ० 42-45 ।

: 'वीरों की कहानी लोकगीतों की जबानी', हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1965 पृ० 3-5 ।

घई, मोतीलाल : 'लोकगीत' : हिमप्रस्थ, सितम्बर, 1960, पृ० 42-46 ।

चौधरी, दर्शनदेवी : 'चम्बा का ढोलरू तथा सुकरात', हिमप्रस्थ, मार्च, 1960, पृ० 41-42 ।

: बिलासपुर के गीत : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1956, पृ० 39-41, अक्टूबर, 1956, पृ० 42-46 ।

: लोकगीत उलाहने : हिमप्रस्थ, जून, 1982, पृ० 42-43 ।

: लोकगीत—ग्राम जीवन की झलकियां : हिमप्रस्थ, मार्च, 1959, पृ० 40-42 ।

: व्यंग्य गीत, हिमप्रस्थ, जुलाई, 1959, पृ० 40-42 ।

: 'पहिये के लोकगीत', हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1956, पृ० 41-43, फरवरी, 1958, पृ० 40-42, मई, 1959, पृ० 39-41, सितम्बर, 1958, पृ० 38-41, अक्टूबर, 1958, पृ० 39-41 ।

: विवाह के गीत : हिमप्रस्थ, नवम्बर, 1960, पृ० 42-43 ।

चौहान अमरसिंह : सिरमौर के लोकगीतों में झुरी : हिमप्रस्थ, मार्च, 1975, पृ० 42-45 ।

: सिरमौर का एक लोकनायक हांक मियां: सोमसी, जुलाई, 1975, पृ० 48-57 ।

चौहान, रोशनलाल, : पव्वर की लहरें : (तहसील रोहड़ू, जिला महासू के चार सौ लामण) रोहड़ू, प्रकाशक-लेखक, सं० 2026, 116 पृ० ।

जयकुमार : बिलासपुर के लोहड़ी के गीत : हिमप्रस्थ, फरवरी, 1960, पृ० 40-42 ।

जस्टा, हरिराम : महासुई लोकगीतों में बिम्ब विधान : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1976, पृ० 14-19 ।

ठाकुर, भोलूराम : **लामण : ठण्डे पानी रे डिमणू** (प्रसिद्ध पहाड़ी लोक-गीत) देवप्रस्थ साहित्य संगम, शिमला, 1976, 144

पृष्ठ।

: कुल्लू के लोकगीतों पर आपात का प्रभाव : हिमप्रस्थ, मार्च, 1967, पृ० 39-41।

: कुल्लू के लोकगीतों में वीर रस : जन साहित्य, मई-जुलाई, 1966 पृ० 146-52, सचित्र।

: कुल्लू के लोकगीतों में सामाजिक चेतना : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1973, पृ० 14-16।

ठाकुर, बालकृष्ण : कुल्वी लामणों में जीवन गाथा : हिमप्रस्थ, अक्टूबर, 1975, पृ० 40-43।

: कुल्लू रे गीत-न प्रकृति चित्रण: हिमभारती, सितम्बर, 1674 पृ० 49-51।

नीरज, रामदयाल : ये अछूती कल्पनाएं हिमाचली लोकगीतों की बानगी : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अप्रैल 18, 1971, पृ० 56।

पखरोलवी, पवन : कुल्लू के लोकगीत : हिमप्रस्थ, अक्टूबर, 1973, पृ० 44-46।

: कांगड़ा लोकगीतों का 'भावलोक' : हिमप्रस्थ, जनवरी, 1968 पृ० 67-68।

: गाती धरती कांगड़ा की : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1968, पृ० 38-43।

पाठक, बंशीधर : मियां साहब फतेसिंह (किन्नर लोकगीत) हिमप्रस्थ, सितम्बर, 1967, पृ० 43-45।

पंडित (कु०) विमल : हिमाचल के गीतों में विरह, हिमप्रस्थ, नवम्बर, 1959 पृ० 40-41।

प्रम, आज्ञाराय : कांगड़ा के लोकगीत : हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1969, पृ० 42-45।

बहुगुणा, कामेश्वर प्रसाद : डोडरा कवार-लामणों का देश : हिमप्रस्थ, मार्च, 1959, पृ० 38-4।

बेबस, चन्द्रशेखर : कुल्लू में भाषा सर्वेक्षण कार्य-कुल्लू का इलाका रूपी के पुराने लोकगीत कुल्लुई में—ओटर सराज (कुल्लू) के पुराने लोकगीत टाप : हिमभारती, मार्च, 1971, पृ० 54-56।

भारद्वाज, हेम : सिरमोरी लोकगीतों में साक्षी : हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1966, पृ० 42-44।

मधु (कु०) : हिमाचल के पावस और विवाह गीत : हिमप्रस्थ, अगस्त, 1963, पृ० 64-68 ।

मनोहर लाल : कांगड़ा के गीतों में बारहमासा : हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1973, पृ० 36-39 ।

: कांगड़ा के नृत्यगीत : हिसप्रस्थ, जून, 1975, पृ०43-45।

ममगाई, केशवनन्द : ऐतिहासिक पुरुष और नन्त राम नेगी : सिरमोरी लोक-गीत) : हिमप्रस्थ, अगस्त, 1963, पृ० 46-47 ।

मिट्टू, हरिकृष्ण और नीरज, रामदयाल : हिमाचल के लोकगीत : लोकसम्पर्क विभाग, शिमला, 1960, 100 पृ० रेखा चित्र।

मोती राम : लोकगीत-सतीचैंखी,हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1955, पृ० 39-41 ।

रणपतिया, अमरसिंह : लोकगीत युकु और सुन्नी : हिमप्रस्थ, फरवरी, 1957, पृ० 44-45

रन्धावा, महेन्द्रसिंह : कांगड़ा : कला, देश और गीत, साहित्य अकादेमी, दिल्ली 1960, 424 पृष्ठ ।

: कांगड़ा के लोकगीत : अतरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1956, 183 पृ० सचित्र ।

: कुल्लू के लोकगीत : अतरचण्द कपूर एण्ड सन्ज, दिल्ली 1955, 163 पृ० सचित्र ।

राठौड़, भुवनेश्वरी : जुब्बल के वीर गीत पवाड़े : हिमप्रस्थ, जनवरी, 1964 पृ० 7-9 ।

रानी (कु०) इन्दिरा : लोकगीत हार टिक्करी : हिमप्रस्थ, फरवरी, 1959, पृ० 45-46।

: लोकगीत—देवी बिंची की अमर कथा : हिमप्रस्थ, नवंबर 1959, पृ० 43-45 ।

: सिरमौर के लोकगीत : हिमप्रस्थ, जून, 1958, पृ० 40-43 ।

वर्मा, खेमीराम : कुल्लू के लामणों प्रणाय : हिमप्रस्थ, जुलाई 1975, पृ० 32-36 ।

वर्मा, प्रेम लता : लोकगीत-छिंज गीत-हिमप्रस्थ, मई, 1959, पृ० 40-42।

व्यथित गौतम : कांगड़ी चैतागीत : डोलरू : हिमप्रस्थ, जून, 1976, पृ० 19-24।

: कांगड़ी लोकगीत : भाग 1, शील प्रकाशन, नरेटी

(कांगड़ा) 1973, 159 पृ० ।

: कांगड़ी लोकगीतों में कल्पना का स्वरूप : सोमसी, जनवरी, 1975, पृ० 33-52 ।

: हिमाचल के लोकगीतों में सामाजिक चेतना : सोमसी, अप्रैल, 1975, पृ० 50-58 ।

विवेक : चम्बयाली लोकगीतों में उलाहना : हिमप्रस्थ, अप्रैल, 1976, पृ० 54-58 ।

वेद आनन्द : हिमाचल लोकगीतों में नारी हृदय की व्यथा, हिमप्रस्थ, अप्रैल, 1970, पृ० 48-58 ।

वेदालंकार, जगतप्रिय : कांगड़ा प्रदेशीय पंजल जनपद के सांस्कारिक लोकगीत: जन साहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 213-22 ।

वैद्य, किशोरीलाल : गुंजती घाटियां—मण्डी के लोकगीत : हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1964, पृ० 42-44 ।

वैद्य, हेमेन्द्रलाल : प्रणय निवदेन का लोकगीतों में स्थान : हिमप्रस्थ जून, 1956, पृ० 37-40 ।

वशिष्ठ, चन्द्रमणि : सिरमौर के लोकगीत : हिमप्रस्थ, मई, 1961, पृ० 90-91 ।

वशिष्ट, श्रुतिप्रकाश : कुलवी लोकगीतों में प्रेम भावना : हिमप्रस्थ, मई, 1966, पृ० 40-42 ।

श्याम लाल : कांगड़ी लोक जीवन में प्राहुणपच्छा : हिमप्रस्थ, सितम्बर, 1975, पृ० 39-44 ।

: कांगड़ा के लोकगीतों में कन्या की विदाई : जनसाहित्य मई-जुलाई, 1966, पृ० 207-12 ।

शर्मा, अमरनाथ : हिमाचल लोकगीतों में भक्ति भावना : हिमप्रस्थ, अगस्त, 1975, पृ० 58-62 ।

शर्मा, कृष्ण : कांगड़ा के यात्रा तथा मेलों सम्बन्धी गीत : जनसाहित्य मई-जुलाई, 1966, पृ० 306-11 ।

: चम्बा के लोकगीत : हिमप्रस्थ, मार्च, 1966, पृ० 44-46 ।

शर्मा गौतम : कांगड़ी लोकगीत : शीला प्रकाशन, नरेटी, कांगड़ा, 1973, 151 पृ० ।

शर्मा, जगदीश : महासुवी लोकगीतों में समाज चित्रण : हिमालय टाइम्स (दिल्ली), सितम्बर, 24, 1973, पृ० 2 ।

: महासुवी लोकगीतों में सामाजिक परिवेश : सोमसी, जुलाई, 1975, पृ० 58-63 ।

शर्मा पूर्णचन्द : चम्बा का लोकगीत : हिमप्रस्थ, दिसम्बर, 1956, पृ० 42-44 ।

शर्मा (कु०) बृज : पर्वतों के गीत आंचल : जनसाहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 267-274 ।

शर्मा, बंशीराम : चरकरी : हिमप्रस्थ जुलाई, 1962, पृ० 20-21 ।

शर्मा, शमी : कांगड़ा लोक साहित्य में सांस्कारिक गीत : जनसाहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 223-230 ।

: संयोग के अग्रदूत-कुल्लू के लोकगीत : सप्तसिंधु, पटियाला, जून, 1963, पृ० 103-04, 108 ।

शास्त्री, हरिचंद : चम्बा के ऐतिहासिक लोकगीत : हिमप्रस्थ, जून, 1956 पृ० 40-41, सचित्र ।

सलीम, लच्छीराम : भारत महासू का प्रचीनतम गायन : हिमभारती, दिसम्वर, 1969, पृ० 36-46 ।

संतोशी, ताराचंद : लोकगीत-गगरी : हिमप्रस्थ, अक्टूबर, 1662, पृ० 44-45 ।

सत्यार्थी, देवेन्द्र : लोकगीत : हिमप्रस्थ, सितम्बर, 1956, पृ० 44-45 ।

सरैक, विद्यानन्द : प्वाड़ा झांको अजूबा : सोमसी, जुलाई, 1975, पृ० 24-34 ।

स्वाधीन, चन्द : लोकगीत— बसी और रणु : हिमप्रस्थ, मई, 1960, पृ० 42-43 ।

हाण्डा, ओंमचन्द : विलासपुर के गीतों में समाज चित्रण : हिमप्रस्थ, फरवरी, 1970, पृ० 19-23 ।

: मण्डी के लोकगीत : हिमप्रस्थ, फरबरी, 1976, पृ० 33-39 ।

5 लोकगाथाएं

अग्नि, वेदप्रकाश : गुजरी काव्य : हिमभारती (शिमला) मार्च, 1976, पृ० 18-20 ।

गुलेरी, पीयूष : कांगड़ा लोककाव्य में वीर रस गाथा तथा रामायण महाभारत का प्रसंग : जनसाहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 153-85 ।

नीरज, रामदयाल : सिरमौरी राजा मही प्रकाशो री हार : चगेर फुल्लां री

राज्य भाषा संस्थान, शिक्षा विभाग, हि० प्र० शिमला 1971, पृ० 10-13 ।

: हिमाचल की लोकगाथाएं : शिमला लोक सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश, 1973, 302 पृ० ।

प्रार्थी लालचन्द : पहाड़ी लोक रामायण : हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, 1974, 256 पृ०

भारद्वाज, बालकराम : गुगा काव्य : हिमभारती, जून, 1971 पृ० 52-96, सितम्बर, 1971, पृ० 52-58, सितम्बर, 1671, पृ० 52-98, दिसम्बर, 1971, पृ० 52-98, मार्च, 1972, पृ० 78-98, जून, 1972, पृ०68-88 और सितम्बर, 72, पृ० 62-88 ।

राठौड़, त्रिभुवन रेखा : गद्दियों का लोक काव्य एंचली : हिमप्रस्थ, मार्च, 1970, पृ० 12-16 ।

: जुब्बल की गाथाएं : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1965, पृ० 13-18 ।

शर्माकमल : कहलूर के लोक जीवन में रामायण और महाभारत : जन साहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 350-52 ।

डा० गौतम व्यथित : हिमाचल की ढोलरू लोक गाथाएं (1980) ।

शर्मा, देवराज : गुगा जाहर पीर : अमर स्टुडेंट स्टोर, विलासपुर, 120 पृष्ठ ।

6 लोककथाएं

अग्नि, वेदप्रकाश : कांगड़ा की लोक कथाएं, जन साहित्य, मई-जुलाई, 1966, पृ० 292-303 ।

कुटलहड़िया, ध्यानसिंह : हिमाचल लोक कथा माला : विद्या मन्दिर, होशियार-पुर, 1964, 55 पृष्ठ ।

गोबर्धनसिंह : जुब्बल की लोककथा—चार चतुर पुरुष : हिमप्रस्थ, मार्च, 1966, पृ० 24-26 ।

चौहान, शिवसिंह : हिमाचल लोककथा नारायण चहारका : हिमप्रस्थ, जनवरी, 1961, पृ० 51-52 ।

जयकुमार : विलासपुर की एक प्रसिद्ध लोककथा—दुर्ग और दुर्गा : हिमप्रस्थ, अक्टूबर, 1960, पृ० 2-5 ।

जयादेवी : लोककथा पर आधारित भाम्बू राय : हिमप्रस्थ, मार्च, 1959, पृ० 14-15 ।

भारत सरकार : पंजाब और कुल्लू की कहानियां : प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1970, 76 पृ॰ सचित्र।

ठाकुर, कलावती : चम्बा की लोककथा : हिमप्रस्थ, अप्रैल, 1962, पृ॰ 42-43।

राठौड़, भुवनेश्वर : रूप बड़ा या गुण- लोककथा : हिमप्रस्थ, जुलाई, 1968, पृ॰ 12-14।

: सारू और सबला—लोककथा : हिमप्रस्थ, सितम्बर, 1972, पृ॰ 32-38।

वत्स, संतराय : हिमाचल की लोककथाएं : आत्माराम एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1962।

व्यथित, गौतम : पहाड़ा दे अत्थरू (हिमाचल लोककथा संग्रह) : शास्त्री प्रकाशन, नरेटी (कांगड़ा), 1971, 100 पृ॰।

शर्मा, देवराज : हिमालय की लोककथाएं : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1971, 40 पृष्ठ, रेखाचित्र।

शर्मा, देवराज : घाटिया री गूंज (हिमाचल लोककथा संग्रह), किरण बुक डिपो, विलासपुर, 1975, 148 पृ॰।

शर्मा, बंशीराम : हिमाचल लोककथाओं का क्षेत्र विस्तार : हिमभारती, सितम्बर, 1974 पृ॰ 1-13।

शास्त्री, खुशीराम : कांगड़े दिया लोककथा : किरन बुक डिपो, विलासपुर, 1975, 44, पृ॰।

हमलाल, घनीराम : चम्बयाली लोककथा : पुनर्जीवन—हिमप्रस्थ, अप्रैल, 1975, पृ॰ 45-46।

हाण्डा, ओमचंद : कांगड़ा की लोककथाएं : हिमप्रस्थ, अक्टूबर, 1971, पृ॰ 38-41।

पर्वतों की गूंज